आचार्यदण्डिप्रणीतः

काव्यादर्शः

'शशिप्रभा' संस्कृतहिन्दीव्याख्यासहितः

प्रथमः परिच्छेदः

(मङ्गलाचरणम्)

चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम ।
मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ।।१।।

अन्वय— चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूः सर्वशुक्ला सरस्वती मम मानसे नित्यं रमताम् ।

शब्दार्थ— चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूः = चार हैं मुख जिसके ऐसे (चार मुख वाले = ब्रह्मा) के मुखरूपी कमल वनों में (विचरण करने वाली) हंसी (हंस की पत्नी) । सर्वशुक्ला = शुभ्रवर्णा, सर्वात्मना शुद्धा । सरस्वती = विद्या की अधिष्ठातृ देवी । मम = मेरे, ग्रन्थकार (दण्डी) के । मानसे = मानस में, चित्त में । नित्यम् = सर्वदा, निरन्तर । रमताम् = रमण करें, विहार करे, निवास करें ।

अनुवाद— चार मुख वाले (ब्रह्मा) के मुखरूपी कमलवनों में (विचरण करने वाली) हंसी (हंस की पत्नी) के समान (श्रुतिरूप में विचरण करने वाली) शुभ्रवर्णा (विद्या की अधिष्ठातृ देवी) सरस्वती मेरे मानस में सर्वदा निवास करें ।

संस्कृतव्याख्या— सर्वे प्रायेण संस्कृतकवयः स्वग्रन्थस्य निर्विघ्नसमाप्त्यर्थं ग्रन्थारम्भे मङ्गलाचरणं प्रयोजयन्ति । आचार्यदण्डी अप्यत्र काव्यादर्शनामकं काव्यलक्षणविधायकं ग्रन्थमिममारभमाणः मङ्गलं चिकीर्षुः विद्याधिष्ठात्रीं देवीं सरस्वतीं प्रार्थयन् तस्याश्च सर्वदा स्वमनसि निवासमभिलषन् स्तौति– **चतुर्मुखेति** । **चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूः** चत्वारि मुखानि यस्य स चतुर्मुखः सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, तस्य मुखानि एवाम्भोजवनानि कमलवृन्दानि तत्र विहरन्ती हंसवधूः हंसस्य पत्नी हंसी इव **सर्वशुक्ला** सर्वतः सर्वावयवेन शुक्ला श्वेवतर्णा **सरस्वती** विद्याधिष्ठातृदेवी **मम** दण्डिनः **मानसे** चेतसि अन्तःकरणे वा **नित्यं** सर्वदा **रमतां** विहरतु वसत्वित्यर्थः। यथा कमलवनवासप्रिया हंसी मानसरोवरे कमलवनेषु विहरति तथैव स्वच्छन्दविहारणीयं सरस्वती ब्रह्मणः चतुर्मुखकमलेषु

चतुर्वेदरूपेण सर्वदा विहरति । सा सरस्वती सर्वशुक्ला नितान्तसर्वदोषरहिता लक्षणया-पदपदार्थवाक्यादिगतदोषरहिता विद्यते । ईदृशी वाग्देवता सरस्वती मम चेतसि सर्वदा प्रीतिमाधाय निवसतु इति भावः । अत्र सरस्वत्यां हसवधूत्वारोपं प्रति चतुर्मुखेऽम्भोज-वनत्वारोपो हेतुरिति रूपकमलङ्कारः मुखमुखेति छेकानुप्रासश्च ।

विशेष—

(१) ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति, शास्त्र-प्रसिद्धि और प्रचार के लिए प्राचीन भारतीय कवियों में ग्रन्थ के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण की परम्परा प्राप्त होती है। जैसा कि पतञ्जलि ने महाकाव्य में कहा है– 'मङ्गलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते'। इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए आचार्य दण्डी ने भी अपने ग्रन्थ काव्यादर्श के प्रारम्भ में विद्या की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती की प्रार्थना करते हुए मङ्गलाचरण किया है।

(२) ब्रह्मा के चार मुख माने जाते हैं। इन चारों मुखों से चारों वेद उद्बुद्ध हुए हैं। इस प्रकार दैवीवाक् श्रुतिरूपी सरस्वती ब्रह्मा के मुख से निःसृत हुई हैं।

(३) यह कविप्रसिद्धि है कि हंस और हंसी मानसरोवर के कमलवनों में स्वच्छन्द विचरण करती हैं। इसीलिए कवि ने सरस्वती पर हंसी और ब्रह्मा के मुख पर कमलवन का आरोप करते हुए अपने मानस में सरस्वती के विहार करने की प्रार्थना किया है।

(४) हंस और हंसी को नीरक्षीरविवेकी माना जाता है। उनके द्वारा ही दूध की शुद्धता का ज्ञान होता है। सरस्वती विद्या की अधिष्ठातृ देवी हैं। जिस प्रकार हंसी के विना दूध की शुद्धता ज्ञात होना असम्भव है उसी प्रकार सरस्वती के विना पद-पदार्थ-वाक्यादिगत दोषरहितता का सम्यक् ज्ञान सम्भव नहीं है। इसीलिए सरस्वती को निरन्तर मानस में निवास करने की प्रार्थना की गयी है जिससे ग्रन्थ पूर्णतः शुद्ध होवे।

(५) हंसी शुभ्रवर्ण वाली होती है। हंसी रूपा सरस्वती भी निर्दोष पदपदार्थादि-दोष से रहित होती हैं। इसीलिए सर्वशुक्ला विशेषण प्रयुक्त है।

(६) ब्रह्मा के मुखों पर कमलवन का आरोप किया गया है, यह तभी सम्भव है जब सरस्वती पर हंसी का रूपक हो। यहाँ प्रयुक्त इन आरोपों के कारण यहाँ पारम्परितरूपक नामक अर्थालङ्कार है। 'मुखमुख' में मुख की दो बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास नामक शब्दालङ्कार है। मानस शब्द में श्लेष है। हंसी के पक्ष में इसका अर्थ मानसरोवर तथा सरस्वती के पक्ष में अन्तःकरण है, अतः श्लेष अलङ्कार है॥१॥

(ग्रन्थविषयप्रतिपादनम्)

पूर्वशास्त्राणि संहृत्य[1] प्रयोगानुपलक्ष्य[2] च।
यथासामर्थ्यमस्माभिः क्रियते काव्यलक्षणम्।।२।।

अन्वय— पूर्वशास्त्राणि संहृत्य प्रयोगान् उपलक्ष्य च अस्माभिः यथासामर्थ्यं काव्यलक्षणं क्रियते।

शब्दार्थ— पूर्वशास्त्राणि = पूर्ववर्ती आचार्यों के (काव्य-विषयक) शास्त्रों को। संहृत्य = संक्षिप्त (या संग्रह) करके। प्रयोगान् = लक्ष्यों को, सारतत्त्वों को, प्रतिपाद्यविषय को। उपलक्ष्य = सूक्ष्म दृष्टि से देखकर (विचारकर)। अस्माभिः = मेरे द्वारा, मैं (दण्डी)। यथासामर्थ्यम् = यथाशक्ति, (अपनी) बुद्धि के अनुसार। काव्यलक्षणम् = काव्य का लक्षण, काव्य-लक्षण (प्रतिपादक ग्रन्थ)। क्रियते = किया जा रहा है, बनाया जा रहा है, लक्षित किया जा रहा है, निरूपित किया जा रहा है।

अनुवाद– पूर्ववर्ती (शिलालि, भरत, काश्यप, वररुचि इत्यादि) आचार्यों के (द्वारा विरचित काव्यविषयक) शास्त्रों को संक्षिप्त (या संग्रह) करके तथा प्रयोगों (लक्ष्यों) को शूक्ष्मरूप से विचार करके मेरे (दण्डी के) द्वारा यथाशक्ति (अपनी बुद्धि के अनुसार) काव्य का लक्षण (काव्यलक्षण प्रतिपादक ग्रन्थ) निरूपित किया जा रहा है।

संस्कृतव्याख्या— ग्रन्थस्य प्रतिपाद्यविषयं तत्प्रतिपादनप्रक्रियाञ्च प्रदर्शयन् निर्दिशत्यत्र कविः-**पूर्वशास्त्राणीति**। **पूर्वशास्त्राणि** पूर्वेषां भरतादीनामाचार्याणां शास्त्राणि लक्षणशास्त्राणि तैर्विरचितानि नाट्यसूत्रादीनि ग्रन्थान् **संहृत्य** संक्षिप्य तान्यर्थतः सङ्गृह्येत्यर्थः, **प्रयोगान्** वाल्मीकि-व्यास-कालिदासादिकवीनां काव्यग्रन्थेषु स्थितान् प्रयोगान् तत्र प्रयुक्तानि लक्ष्याणि च उपलक्ष्य सूक्ष्मदृष्ट्या सम्यगालोच्य **अस्माभिः** मया दण्डिना **यथासामर्थ्यं** यथाशक्तिं स्वबुद्ध्यनुसारं **काव्यलक्षणम्** इतरव्यवच्छेदकमसामान्यधर्मरूपस्वरूपं लक्षणं काव्यस्वरूपपरिचायकं वस्तुवर्णनं **क्रियते** निरूप्यते। अत्र दण्डिना यथासामर्थ्यमित्यनेन स्वस्य विनम्रता प्रदर्शिता, काव्यलक्षणं क्रियत इत्यनेन काव्यस्वरूपपरिचायकं विषयं विधीयते इति विवक्षा। पद्येऽस्मिन् विषयप्रयोजनसम्बन्धाधिकारिरूपेऽनुबन्धचतुष्टये काव्यस्वरूपं प्रतिपाद्यविषयं, काव्यलक्षणज्ञानं प्रयोजनं, प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावश्च सम्बन्धः, काव्यलक्षणज्ञानाभिलाषी चाधिकारी इति सूचितम् ॥२॥

---

(१) संक्षिप्य

(२) उपलभ्य

विशेष—

(१) कतिपय आचार्य 'क्रियते काव्यलक्षणम्' के आधार पर दण्डी के काव्यादर्श का नामकरण 'काव्यलक्षण' स्वीकार करते हैं। मिथिला विद्यापीठ दरभंगा द्वारा १९५६ में प्रकाशित रत्नश्री टीका (१९३१ ई०) की पाण्डुलिपि में इस ग्रन्थ का नाम 'काव्यलक्षण' उल्लिखित है। कुन्तक के वक्रोक्तिजीवित में (३.३३) में दण्डी को लक्षणकार कहा गया है।

(२) दण्डी के सामने उनसे पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा विरचित काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ विद्यमान थे। काव्यादर्श की हृदयंगमा टीका में दण्डी से पूर्ववर्ती काश्यप और वररुचि नामक आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। शिलालि, भरत, मेधावी, विष्णुधर्मोत्तरपुराणकार इत्यादि कतिपय अन्य आचार्य भी दण्डी से पूर्ववर्ती थे।

(३) काव्यस्वरूप निरूपण की प्रक्रिया में दण्डी ने शास्त्र और प्रयोग अर्थात् लक्षण और लक्ष्य दोनों का सम्यक् अनुशीलन किया है। 'पूर्वशास्त्राणि सङ्गृह्य' और 'प्रयोगानुपलक्ष्य च' इन दोनों विशेषणों द्वारा इस तथ्य का उद्घाटन उन्होंने किया है कि ग्रन्थ में प्रतिपादित लक्षण केवल काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर ही नहीं किया गया है, प्रत्युत वह काव्य ग्रन्थों में उपलब्ध प्रयोगों का भी अनुसरण करता है।

(४) इस श्लोक में अनुबन्ध चतुष्टय-विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध और अधिकारी का भी प्रदर्शन हुआ है। प्रतिपाद्यविषय काव्य का स्वरूप निरूपण है। काव्य के स्वरूप का ज्ञान होना प्रयोजन है, प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभाव ही सम्बन्ध है, और काव्यस्वरूप के ज्ञान की अभिलाषा रखने वाले लोग अधिकारी हैं।

(५) काव्य के स्वरूप का निरूपण ग्रन्थ का प्रतिपाद्यविषय है। काव्य की परिभाषा, उसके विविध रूपों और उसके गुणां, दोषों तथा अलङ्कारों की विवेचना काव्य-स्वरूप निरूपण के विभिन्न अङ्ग हैं॥ २॥

(अन्वयेन वाचां लोकव्यवहारोपयोगिता)

इह शिष्टानुशिष्टानां शिष्टानामपि सर्वथा।
वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते॥३॥

अन्वय— इह शिष्टानुशिष्टानां शिष्टानां वाचाम् एव प्रसादेन लोकयात्रा सर्वथा प्रवर्तते।

शब्दार्थ— इह = इस जगत् (संसार) में। शिष्टानुशिष्टानाम् = (पाणिनि, वररुचि इत्यादि) वैयाकरणों (शब्दानुशासनवेत्ताओं, शिष्टों) के द्वारा अनुशासित

(प्रकृति-प्रत्यय विभाग द्वारा साधित)। शिष्टानाम् = (साधित पदों से) अवशिष्ट (भिन्न अर्थात् अननुशासित)। वाचाम् एव = वाणी की ही, शब्द की ही, पद की ही। प्रसादेन = प्रसाद से, सहायता से, अनुग्रह से। लोकयात्रा = लोकव्यवहार, लोगों (प्राणियों) का व्यवहार-कार्य। सर्वथा = सर्वथा, सभी प्रकार से। प्रवर्तते = चलता है, सिद्ध होता है, सम्पन्न होता है।

अनुवाद— इस जगत् में (पाणिनि, वररुचि इत्यादि) वैयाकरणों (शब्दानुशासनवेत्ताओं) के द्वारा अनुशासित (प्रकृति-प्रत्यय विभाग द्वारा साधित) तथा (उन साधित पदों से) अवशिष्ट (तद्भिन्न अर्थात् अननुशासित) वाणी (शब्द) की ही सहायता (अनुग्रह) से लोक-व्यवहार (लोगों का व्यवहार-कार्य) चलता है (सम्पन्न होता है)।

संस्कृतव्याख्या— काव्याधारभूतानां वाचां लोकव्यवहारोपयोगिता अन्वयव्यतिरेकाभ्यां निर्देशयन् ग्रन्थकारोऽत्र प्रथममन्वयद्वारा वाण्याः महत्त्वं प्रदर्शयति-**इहेति । इह** अस्मिन् जगति **शिष्टानुशिष्टानां** शिष्टैः पाणिनिवररुचिप्रभृतिभिः शब्दानुशासनकृद्भिः वैयाकरणैः वा संस्कृतप्राकृतानां तथा च **शिष्टानां** शिष्टानुशिष्टाभ्यांभिन्नानां अर्थात् वैयाकरणैः अननुशासितानां संस्कृतप्राकृतभिन्नानां देशभाषाणां **वाचां** गिराम् एव प्रसादेन अनुग्रहेण साहाय्येन वा **लोकयात्रा** लोकानां देवानारभ्य पामरपर्यन्तानां जनानां प्राणिनां लोकयात्राव्यवहारः **प्रवर्तते** प्रचलति सम्पद्यते वा। वस्तुतस्तु लोकव्यवहारो वाचां प्रयोगेनैव प्रचलति। संसारेऽस्मिन् द्विविधा वाचः उपलभ्यन्ते। प्रथमा शिष्टानुशिष्टाः संस्कृताः प्राकृताश्च इतरा शिष्टा तद्भिन्ना देशी वाक् च। द्विविधानामप्यासां वाचां प्रयोगो लोकव्यवहारप्रवृत्तौ हेतुः। यतो हि वाचामभावे कोऽपि स्वाभिप्रायं प्रकटयितुं समर्थो न भवतीति।

विशेष—

(१) पाणिनि, वररुचि इत्यादि शब्द के अनुशासन को जानने वाले वैयाकरण शिष्टजन हैं और उनके द्वारा अनुशासित (प्रकृति-प्रत्यय विभाग इत्यादि द्वारा साधित) वाणी संस्कृत, प्राकृत शिष्टानुशिष्ट वाणी है। इस शिष्टानुशिष्ट वाणी से अन्य वाणी शिष्ट (अवशिष्ट = शेष) वाणी कही गयी है।

(२) इस कारिका में अन्वय से लोकव्यवहार की सिद्धि के लिए शब्द-प्रयोग की उपयोगिता को बतलाया गया है। वाणी के प्रयोग से ही लोक व्यवहार के सम्पूर्ण कार्य सम्पादित होते हैं। वाणी के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने अभिप्राय को प्रकट नहीं कर सकता।

(३) लोकव्यवहार की सिद्धि के लिए दण्डी ने संस्कृत, प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश की भी उपयोगिता को स्वीकार किया है तथा १.३२ कारिका में उन्होंने भाषा को

आधार बनाकर काव्यजगत् को इन चार भागों में विभक्त किया है— संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र। इनमें से कुछ व्याख्याकारों के अनुसार संस्कृत ही वैयाकरणों द्वारा अनुशासित भाषा है तथा शेष अननुशासित। किन्तु संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत भी वैयाकरणों द्वारा अनुशासित की गयी है केवल अपभ्रंश ही अननुशासित है।

(व्यतिरेकेण वाचां लोकव्यवहारोपयोगिता)

इदमन्धंतमं कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं[१] न दीप्यते।।४।।

अन्वय— यदि शब्दाह्वयं ज्योतिः आसंसारं न दीप्यते (तर्हि) इदं कृत्स्नं भुवनत्रयम् अन्धंतमः जायेत।

शब्दार्थ— यदि = यदि। शब्दाह्वयम् = शब्द नामक। ज्योतिः = ज्योति, प्रकाशक-तत्त्व। आसंसारम् = समस्त जगत् को अथवा सृष्टिकाल से। न दीप्यते = दीपित नहीं करती रहती, प्रकाशित नहीं करती रहती। तर्हि = तो। इदं = यह, प्रत्यक्ष दृश्यमान। भुवनत्रयम् = त्रिभुवन। अन्धंतमः = (अज्ञान रूपी) धने अन्धकार वाला। जायेत = हो जाता।

अनुवाद— यदि शब्द नामक ज्योति (प्रकाशक-तत्त्व) समस्त संसार को (अथवा सृष्टिकाल से) दीपित (प्रकाशित) नहीं करती रहती तो यह समस्त त्रिभुवन (अज्ञानरूपी) घने अन्धकार वाला हो जाता (अर्थात् अज्ञानरूपी घने अन्धकार में विलीन हो जाता)।

संस्कृतव्याख्या— व्यतिरेकेणात्र आचार्यः वाचां लोकव्यवहारसाधनता प्रदर्शयति- **इदमिति**। **यदि** चेत् **शब्दाह्वयं** शब्दनामकं **ज्योतिः** प्रकाशकतत्त्वम् **आसंसारं** सर्वं जगत् सृष्टिकालादारभ्य वा **न दीप्यते** न प्रकाशते तर्हि **इदं** पुरोविद्यमानं **कृत्स्नं** सम्पूर्णं **भुवनत्रयं** त्रयाणां स्वर्गभूलोकपातालाभिधानां लोकानां समाहारः यस्मिन् तादृशं त्रिभुवनं **अन्धंतमः** अज्ञानरूपेण गाढान्धकारेण आच्छादितं **जायेत** भवेत। यथा सूर्यादिज्योतिषोऽभावे संसारमिदं गहनान्धकारेण व्याप्तं भवति तथैव शब्दरूपज्योतिषोऽभावेऽपि सर्वं विश्वं शब्दसाध्यानां व्यवहाराणामनभ्युपायतया विलुप्तलोकव्यवहारं सम्पूर्णं जगद् अन्धकारमयं भवेत। शब्दाभिधानस्य ज्योतिष एवायं महिमा यदयं लोको व्यवहारेषु न मुह्यति। यदि शब्दाः न भवेयुस्तदा लोकोऽयं व्यवहारं विधातुं न समर्थो जायेत।

विशेष—

(१) इस कारिका में वाणी की महिमा का प्रतिपादन व्यतिरेक से किया गया है। जिस

(१) आसंसारात्र

प्रकार सूर्यादि-ज्योति के अभाव में सम्पूर्ण संसार गाढ अन्धकाराच्छन्न हो जाता है उसी प्रकार वाणी रूपी ज्योति के अभाव में भी शब्द-साध्य व्यवहार के लुप्त हो जाने से सम्पूर्ण संसार अन्धकारमय हो जाता है।

(२) यह शब्दमय ज्योति की ही महत्ता है कि यह संसार व्यवहारलोप को प्राप्त करके अन्धकार निमग्न-सा नहीं होता।

(३) किसी विषय का प्रतिपादन दो प्रकार से होता है– अन्वय द्वारा और व्यतिरेक द्वारा। जैसे– किसी छात्र को अध्ययनाभिमुख करने के लिए कहा जाता है कि यदि परिश्रम से पढ़ोगे तो अच्छे अङ्क मिलेंगे– यह कथन अन्वय से है। इसी तथ्य को यदि इस प्रकार कहा जाय कि यदि परिश्रम से नहीं पढ़ोगे तो अच्छे अङ्क नहीं मिलेंगे– यह कथन व्यतिरेक से है। इस कारिका में वाणी की महत्ता का प्रतिपादन व्यतिरेक रूप से किया गया है।

आदिराजयशोबिम्बमादर्शं प्राप्य वाङ्मयम्।
तेषामसन्निधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति ।।५।।

अन्वय— आदिराजयशोबिम्बं वाङ्मयम् आदर्शं प्राप्य तेषाम् असन्निधाने अपि न नश्यति (इति) स्वयं पश्य।

शब्दार्थ— आदिराजयशोबिम्बं = प्राचीन (मनु आदि) राजाओं का यश (कीर्ति) रूपी बिम्ब (प्रतिरूप)। वाङ्मयम् = (कवियों द्वारा विरचित) काव्यप्रबन्ध रूपी। आदर्शम् = दर्पण को। प्राप्य = प्राप्त करके। तेषाम् = उन (राजाओं) के। असन्नि-धानेऽपि = विद्यमान न होने पर भी, जीवित न रहने पर भी। न नश्यति = विनष्ट नहीं होता, समाप्त नहीं होता। स्वयं पश्य = (इस तथ्य को) तुम स्वयं देख लो।

अनुवाद— प्राचीन (मनु आदि) राजाओं का यशरूपी (कीर्ति-रूपी) बिम्ब (प्रति-रूप) (कवियों द्वारा विरचित) काव्यप्रबन्धरूपी दर्पण को प्राप्त करके उन राजाओं के विद्यमान (जीवित) न रहने पर भी विनष्ट (समाप्त) नहीं होता। (इस तथ्य को) तुम स्वयं देख लो।

संस्कृतव्याख्या— सामान्यरूपेण वाचां महत्त्वं प्रतिपाद्य अत्र विशेषेण काव्य-प्रबन्धरूपस्य वाङ्मयस्य महत्त्वं प्रतिपादयति– आदिराजेति। **आदिराजयशोबिम्बम्** आदिराजानां मन्वादीनां प्राचीनानां राज्ञां यशोबिम्बं कीर्त्तिरूपं प्रतिरूपं **वाङ्मयं** कविविर-चितं काव्यप्रबन्धरूपम् **आदर्शं** दर्पणं **प्राप्य** लब्ध्वा साम्प्रतिके **तेषां** राज्ञाम् **असन्निधा-नेऽपि** पञ्चतत्त्वविलीनेऽपि **न नश्यति** न विनश्यति तथ्यमिदं **स्वयं पश्य** स्वयमेव **पश्य** अवलोकय, विभावयेत्यर्थः। दर्पणे बिम्बस्य प्रतिबिम्बनं तावत्कालपर्यन्तमेव जायते यावत्कालं बिम्बं तत्र विद्यमानः भवति। तदभावे तु प्रतिबिम्बस्याप्यभावो भवति।

परञ्च काव्यप्रबन्धरूपस्य दर्पणस्य वैशिष्ट्यमिदं यत् तत्र प्राचीनानां राज्ञां यशोरूपं प्रतिबिम्बं तेषां नृपाणामपगमेऽपि प्रतिबिम्बितमेव भवति। श्लोकेऽस्मिन् उपमानभूतलौकिकदर्पणापेक्षया उपमेयभूतस्य वाङ्मयरूपदर्पणस्याधिक्यवर्णनाद् व्यतिरेकोऽलङ्कारः। अत्र प्राचीनानां राज्ञां यशःख्यापनं काव्यस्य प्रयोजनमुक्तम्। काव्यकारस्यात्मयशोप्रभृतीन्यपि काव्यस्य प्रयोजनानि भवन्ति। तानि प्रयोजनानि काव्यादर्शस्य प्रथमपरिच्छेदान्ते ग्रन्थान्ते च निर्दिष्टानि।

विशेष—

(१) मनु इत्यादि राजागण आज जीवित नहीं है तथापि उनका यशोगान कवियों द्वारा विरचित काव्यरूपी दर्पण में प्रतिबिम्ब की भाँति दिखलायी देता रहता है।

(२) लोक में दर्पण के सम्मुख जब तक कोई व्यक्ति या वस्तु विद्यमान रहती है। तब तक उनका प्रतिबिम्ब दिखालायी पड़ता है तथा उसके वहाँ विद्यमान न होने पर प्रतिबिम्ब नहीं दिखलायी पड़ता। कारिका में लोकदर्पण की अपेक्षा काव्यदर्पण का वैशिष्ट्य निरूपित किया गया है। काव्यदर्पण में प्राचीन राजाओं आदि के यश इत्यादि का प्रतिबिम्ब उनके जीवित न रहने पर भी विद्यमान रहता है अर्थात् काव्य में चित्रित उनका यश उनके न रहने पर भी विनष्ट नहीं होता।

(३) कारिका में उपमानभूत लौकिकदर्पण की अपेक्षा उपमेयभूत काव्यदर्पण के आधिक्य का वर्णन होने के कारण यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है।

(४) दण्डी ने इस कारिका में प्राचीन राजाओं के यश का कीर्तन (ख्यापन) करना काव्य का एक प्रयोजन माना है। काव्यकार कवि के द्वारा यश की प्राप्ति भी काव्य का एक प्रयोजन है। जैसा काव्य-प्रकाशकार मम्मट ने कहा है–

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मितोपदेशयुजे॥

इस कारिका में मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजनों को स्वीकार किय है– यश, अर्थ, आचार-ज्ञान, अमङ्गलनिवारण, रसानुभवजन्यानन्द और कान्तासम्मितोपदेश। इन प्रयोजनों में यशप्राप्ति प्रथमस्थानीय है। दण्डी ने भी कवि द्वारा यशप्राप्ति के प्रयोजन को माना है जिसका प्रतिपादन उन्होंने काव्यादर्श १.१०५ तथा ३.१८७ में किया है॥ ५॥

(सुप्रयोगदुष्प्रयोगयोः प्रशंसा निन्दा च)

गौर्गौः कामदुधा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति॥ ६॥

अन्वय— सम्यक्प्रयुक्ता गौः बुधैः कामदुधा गौः स्मर्यते। दुष्प्रयुक्ता सा एव पुनः प्रयोक्तुः गोत्वं शंसति।

शब्दार्थ— सम्यक्प्रयुक्ता = (दोषरहित और गुणसहित) भलीभाँति प्रयोग में लायी गयी। व्यवहृत। गौः = वाणी। बुधैः = पण्डितों (विद्वानों) द्वारा। कामदुधा = कामदोहिनी (इच्छानुसार दूध देने वाली), अभीष्ट फल (दूध) प्रदान करने वाली। गौः = गाय। स्मर्यते = कही गयी है, मानी (स्वीकार) की गयी है। दुष्प्रयुक्ता = दोषपूर्ण रूप से प्रयुक्त। सा एव = वह ही (वाणी)। पुनः = किन्तु। प्रयोक्तुः = प्रयोग करने वाले (कवि) की, प्रयोग करने वाले (वक्ता) की। गोत्त्वम् = वृषभत्त्व को अर्थात् मूर्खता को। शंसति = प्रख्यापित (प्रकट-प्रदर्शित) करती है।

अनुवाद— (दोषरहित और गुणयुक्त) भलीभाँति प्रयोग में लायी गयी (व्यवहृत) वाणी विद्वानों द्वारा अभीष्ट फल (दूध) देने वाली गाय (कामधेनु) कही गयी (मानी गयी) है; किन्तु दोषपूर्ण रूप से प्रयुक्त वही वाणी (प्रयोगकर्त्ता के) वृषभत्त्व (अर्थात् मूर्खता) को प्रख्यापित (प्रदर्शित) करती है।

संस्कृतव्याख्या— पूर्वस्यां कारिकायां काव्यप्रबन्धरूपायाः वाचः प्रयोजनत्वं निर्दिश्यात्र तस्याः वाचः सुप्रयोगस्य सुपरिणामत्वं दुष्प्रयोगस्य च अयशस्करत्वं प्रदर्शयति शास्त्रकारः-**गौर्गौरिति**। **सम्यक्प्रयुक्ता** दोषराहित्येन गुणालङ्कारयुक्तेन च प्रयुक्ता व्यवहृता **गौः** वाणी **बुधैः** पण्डितैः, **कामदुधा** अभीष्टफलप्रदायिनी **गौः** धेनुः इति **स्मर्यते** आख्यायते मन्यते वा। यथोक्तं महाभाष्ये पतञ्जलिना– 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुक् इति। एवं वाचः सुप्रयोगस्य सुफलत्वं निर्दिष्टम्। परञ्च **दुष्प्रयुक्ता** सदोष-गुणालङ्कारहितेन च व्यवहृता वाणी **प्रयोक्तुः** दुष्प्रयोगकर्त्तुः कवेः वक्तुः च **गोत्त्वं** वृषभत्त्वं मूर्खत्त्वमित्यर्थः, **शंसति** प्रसारयति। यथोक्तं महाभाष्ये– "वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः" इति। अत एव वाचः दुष्प्रयोगः परिहर्त्तव्यः।

विशेष—

(१) इस कारिका में दण्डी ने सम्यक्प्रयुक्त और दुष्प्रयुक्त वाणी से प्राप्त होने वाले सुपरिणाम और दुष्परिणाम का निरूपण किया है।

(२) दोषों से रहित और गुणलङ्कार से युक्त प्रयुक्त वाणी उसी प्रकार अभीष्ट फल देने वाली होती है जैसे कामधेनु व्यक्ति की अभिलाषाओं को पूरा करती है; किन्तु सदोष और गुणालङ्कार विहीन प्रयुक्त वाणी प्रयोग करने वाले व्यक्ति की मूर्खता को सिद्ध करती है।

(३) गुणों और अलङ्कारों का प्रयोग एवं दोषों का परिहार वाणी के सुप्रयोग के साधन

तत्त्व हैं। गुणों और अलङ्कारों से रहित तथा सदोष वाणी का प्रयोग करना उसका दुष्पयोग है।

(४) गुणों तथा अलङ्कारों के सहित तथा रोषरहित वाणी के प्रयोग के लिए प्रयोक्ता को गुणों, अलङ्कारों और दोषों का ज्ञान आवश्यक है। इसलिए दण्डी ने काव्यादर्श में सुप्रयुक्त वाणी के इन तत्त्वों– गुणों, अलङ्कारों तथा दोषों का विवेचन विस्तार-पूर्वक किया है जिसे जानकर प्रयोक्ता अपनी वाणी में गुणों तथा अलङ्कारों का समायोजन और दोषों का परिहार कर सके।

(५) दण्डी के इसी तथ्य को पतञ्जलि ने भी अपने महाभाष्य में उद्घाटित किया है– 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति'। 'वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः' ॥६॥

(अल्पदोषस्याप्यनुपेक्षता)

तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथञ्चन।
स्याद् वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम्॥ ७॥

अन्वय— तत् काव्ये अल्पम् अपि दुष्टं कथञ्चन न उपेक्ष्यं (यतो हि) सुन्दरम् वपुः अपि एकेन श्वित्रेण दुर्भगं स्यात्।

शब्दार्थ— तत् = तो, इसलिए। काव्ये = काव्यप्रबन्ध में। अल्पम् अपि = स्वल्पमात्र भी, थोड़ा भी। दुष्टम् = दोष। कथञ्चन = किसी प्रकार से। न उपेक्ष्यम् = उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए, छोड़ा नहीं जाना चाहिए। सुन्दरम् = सुन्दर, रमणीय, मनोहर, मधुर। वपुः अपि = शरीर भी। एकेन = एक (अङ्ग विशेष वाले) लघु। श्वित्रेण = श्वेतकुष्ठ (के दाग) से। दुर्भगम् = कुरूप, निन्दापात्र, घृणित। स्यात् = हो जाता है।

अनुवाद— इसलिए काव्यप्रबन्ध में स्वल्पमात्र (थोड़ा) भी दोष किसी प्रकार से उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए (छोड़ा नहीं जाना चाहिए) क्योंकि रमणीय (मनोहर) शरीर भी एक (अङ्ग-विशेष पर विद्यमान लघु) श्वेतकुष्ठ (के दाग) से कुरूप (घृणित) हो जाता है।

संस्कृतव्याख्या— गुणानां ग्रहणत्वं दोषाणां हेयत्वं च सामान्येन प्रतिपाद्य दृष्टान्तेनात्र विशिष्य दोषाणां हेयत्वं विशदयति– **तदल्पमिति**। **तत्** तत्मात्कारणात् दुष्टप्रयुक्तायाः वाचोऽनेकविधायशः प्रख्यापकत्वात् तन्निषिद्धत्वाच्च **काव्ये** काव्यप्रबन्धे **अल्पमपि** पदपदांशगतं स्वल्पमात्रमपि **दुष्टं** दोषः **कथञ्चन** केनापि प्रकारेण **न उपेक्ष्यं** न परित्यक्तव्यम्, सर्वथैव स्वल्पानामपि दोषाणां परिहाराय यत्नः कर्त्तव्यः इत्यर्थः।

यतो हि **सुन्दरं** निसर्गतः सुविभक्तसुगठितसर्वाङ्गतया रमणीयं **वपुः अपि** शरीरमपि **एकेन** एकाङ्गविशेषे विद्यमानेन लघुनापि **श्वित्रेण** श्वेतकुष्ठेन **दुर्भगं** सर्वाङ्गमधुरं-शरीरं कुरूपं सौमाग्यरहितं वा **स्यात्** भवेत्। यथा शरीरैकभागे स्थितं स्वल्पमपि श्वेतकुष्ठं मनोहरमपि शरीरं कुरूपं करोति तथैवा कुत्रचित् पदे पदांशे वा विद्यमानेन स्वल्पदोषेण सकलं सुन्दरमपि काव्यं निन्दितं भवति। अतः सर्वथा तत्परिहाराय प्रयत्नः कर्त्तव्यः। अत्रोपमानोमपेयभूतयोः पूर्वोत्तरवाक्ययोः बिम्बप्रतिबिम्बभावेन भिन्न-धर्मनिर्देशाद् दृष्टान्तोऽलङ्कारः॥ ७॥

विमर्श—

(१) सगुण शब्द का प्रयोग करने वाला व्यक्ति प्रशंसनीय होता है और सदोष शब्द का प्रयोग करने वाला व्यक्ति मूर्ख कहलाता है। अतः काव्य में स्वल्प दोष का भी परिहार करना चाहिए; क्योंकि गुणों का सन्निपात होने पर भी काव्य में एक छोटा सा दोष उस सम्पूर्ण काव्य की मनोहरता को दूषित कर देता है।

(२) काव्य में स्वल्प दोष के निवारण के लिए दण्डी ने एक दृष्टान्त दिया है। यदि किसी निसर्गतः सुन्दर शरीर वाले व्यक्ति के किसी अङ्ग विशेष पर श्वेतकुष्ठ का एक छोटा सा धब्बा हो तो उसका सम्पूर्ण सौन्दर्ययुक्त शरीर घृणित हो जाता है।

(३) जिस प्रकार सौन्दर्य युक्त शरीर वाले व्यक्ति की सुन्दरता को एक छोटा सा श्वेत कुष्ठ का धब्बा घृणा का पात्र बना देता है उसी प्रकार सम्पूर्ण गुणों से युक्त काव्य में विद्यमान स्वल्प दोष भी काव्य की सम्पूर्ण गुणता को विनष्ट करके उसे घृणित (निन्दनीय) काव्य की श्रेणी में खड़ा कर देता है। इसीलिए शास्त्रकार ने काव्य में छोटे से छोटे दोष से भी बचने का निर्देश दिया है।

(४) इस कारिका में उपमान और उपमेय-भूत पूर्ववर्ती और परवर्ती वाक्यों का विम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से भिन्न धर्म का निर्देश होने के कारण दृष्टान्त अलङ्कार है।

(शास्त्रज्ञानोपयोगिता)

गुणदोषानशास्त्रज्ञः कथं विभजते जनः।
किमन्धस्याधिकारोऽस्ति रूपभेदोपलब्धिषु ॥८॥

अन्वय— अशास्त्रज्ञः जनः गुणदोषान् कथं विभजते। किं रूपभेदोपलब्धिषु अन्धस्य अधिकारः अस्ति।

शब्दार्थ— अशास्त्रज्ञः = शास्त्र को न जानने वाला, शास्त्र से अनभिज्ञ। जनः = व्यक्ति, मनुष्य, कवि। गुणदोषान् = गुणों और दोषों को। कथम् = किस प्रकार। विभजते = विभाजित कर सकता है, अलग-अलग कर सकता है, जान

सकता है, विवेचन कर सकता है। किं = क्या। रूपभेदोपलब्धिषु = रूप के भेद की पहचानों (उपलब्धियों) में। अन्धस्य = अन्धे व्यक्ति का, नेत्र-विहीन व्यक्ति का। अधिकार: = अधिकार, सामर्थ्य, क्षमता, शक्ति। अस्ति = होती है।

अनुवाद— शास्त्र को न जानने वाला (शास्त्र से अनभिज्ञ) व्यक्ति गुणों और दोषों को किस प्रकार विभाजित कर सकता है (जान सकता है, विवेचन कर सकता है)? अर्थात् नहीं जान सकता है। क्या रूप (सफेद, पीला, हरा, गोरा, काला इत्यादि) की पहचान में अन्धे व्यक्ति की क्षमता (शक्ति) होती है? अर्थात् अन्धे व्यक्ति में रूप को पहचानने की क्षमता नहीं होती।

संस्कृतव्याख्या— गुणदोषाणां ज्ञानार्थं काव्यशास्त्रज्ञानस्यानिवार्यत्वं प्रतिपादयत्यत्र **गुणदोषानिति**। **अशास्त्रज्ञः** काव्यशास्त्रज्ञानविहीन: **जनः** व्यक्तिः **गुणदोषान्** श्लेषप्रसादादीन् वक्ष्यमाणान् गुणान् अपार्थत्वादिन् हेयप्रोक्तान् दोषांश्च **कथं** केन प्रकारेण **विभजते** विभाजितुं शक्यते। काव्यशास्त्रज्ञानविहीन: जन: गुणदोषान् कथमपि विभाजितुं न शक्यते इत्यर्थ:। दृष्टान्तेन स्वमतं समर्थयति– **किं रूपभेदोपलब्धिषु** किं रूपस्य चक्षुरिन्द्रियमात्रग्राह्यगुणविशेषस्य भेदानां विविधप्रकाराणां श्वेतपीतादिरूपाणाम् उपलब्धिषु परिचयेषु विशेषज्ञानेषु **अन्धस्य** नेत्रविहीनस्य जनस्य **अधिकारः** सामर्थ्यम् **अस्ति** विद्यते? नास्तीति भाव:। यथा नेत्रविहीन: व्यक्तिः नेत्रगाह्यान् श्वेतपीतादिरूपभेदान् ज्ञातुमसमर्थ: भवति तथैव काव्यशास्त्रज्ञानरहित: जन: गुणदोषविभागेऽसमर्थो जायते। अत: गुणदोषान् ज्ञातुं काव्यशास्त्रस्य ज्ञानमपरिहार्यम्। अत्रापि दृष्टान्तोऽलङ्कार:।

विशेष—

(१) प्रस्तुत कारिका में काव्यशास्त्र के प्रयोजन को प्रतिपादित किया गया है।

(२) जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति श्वेत-पीतादि रूप भेदों को नहीं पहचान सकता उसी प्रकार काव्यशास्त्र को न जानने वाला व्यक्ति भी गुणों और दोषों का भेद नहीं जान सकता।

(३) काव्य की उत्तमता को जानने के लिए काव्य के गुणों और दोषों का ज्ञान आवश्यक है। गुणों और दोषों का ज्ञान काव्यशास्त्रविषयक ग्रन्थ से ही होता है, अत: गुणों तथा दोषों के ज्ञान के लिए काव्य के कर्त्ता, आलोचक और पाठक को काव्यशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है।

(४) इस कारिका में उपमान और उपमेयभूत पूर्ववर्ती और परवर्ती वाक्यों का विम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से भिन्न धर्म का निर्देश होने के कारण दृष्टान्त अलङ्कार है।

(काव्यशास्त्रप्रवृत्तिः)

अतः प्रजानां[१] व्युत्पत्तिमभिसन्धाय सूरयः ।
वाचां विचित्रमार्गाणां निबबन्धुः क्रियाविधिम् ।।९।।

अन्वय— अतः सूरयः प्रजानां व्युत्पत्तिम् अभिसन्धाय विचित्रमार्गाणां वाचां क्रियाविधिं निबबन्धुः ।

शब्दार्थ— अतः = इसलिए, इसी कारण । सूरयः = विद्वान्, आचार्य । प्रजानाम् = लोगों के । व्युत्पत्तिम् = (काव्यशास्त्र के) ज्ञान के लिए, ज्ञान (को) । अभिसन्धाय = उद्दिष्ट करके, विषय बनाकर, लक्ष्य करके । विचित्रमार्गाणाम् = विभिन्न मार्गों वाली (विभिन्न प्रकारकी रचनविधा वाली) । वाचाम् = (काव्यात्मक) वाणी के । क्रिया-विधिम् = कार्यविधान को, रचनाविधान को, रचनापद्धति को । निबबन्धुः = विहित किया है, प्रतिपादित किया है ।

अनुवाद— (गुणों और दोषों का सम्यक् ज्ञान काव्यशास्त्र के ज्ञान से ही होता है) इसलिए (प्राचीन भारतादि) आचार्यों ने लोगों के (काव्यशास्त्र के) ज्ञान को लक्ष्य (विषय) बनाकर (वैदर्भी गौडीय इत्यादि रीतियों प्रभेद वाले) विभिन्न प्रकार (रचना-विधा) वाली (काव्यात्मक) वाणी की रचनापद्धति को (अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में) प्रतिपादित किया है ।

संस्कृतव्याख्या— गुणदोषविवेकार्थं काव्यशास्त्रज्ञानस्यानिवार्यतां निरूप्य लोके काव्यशास्त्रग्रन्थानां प्रवृत्तिं प्रतिपादयत्यत्र-**अत इति** । अतः गुणदोषविभागार्थं काव्य-शास्त्रज्ञानमावश्यकं एतस्मात्कारणात् **सूरयः** भरतादयः विद्वान्सः काव्यशास्त्रस्य आचार्याः **प्रजानां** लोकानां **व्युत्पत्तिं** काव्यशास्त्रस्य परिज्ञानं **अभिसन्धाय** उद्दिश्य विचित्रमार्गाणां वैदर्भगौडीयादिभेदेन विचित्राः विविधाः मार्गाः पन्थानः यासां तथाभूतानां **वाचां** वाक्-प्रबन्धानां **क्रियाविधिं** निर्माणपद्धतिं काव्यशास्त्रमित्यर्थः **निबबन्धुः** विरचयामासुः । काव्यशास्त्रग्रन्थानां विरचनकार्ये प्रवृत्ताः अभवन् ।

विमर्श—

(१) गुणों और दोषों के विभाग के लिए काव्यशास्त्र के ज्ञान की अनिवार्यता को प्रति-पादित करके इस कारिका में दण्डी ने काव्यशास्त्र-विषयक ग्रन्थों के प्रणयन की प्रवृत्ति का प्रतिपादन किया है ।

(२) क्रियाविधि का अर्थ है– काव्यशास्त्र । भरत आदि प्राचीन आचार्यों ने काव्यशास्त्रीय-विषयों के ज्ञान की आवश्यकता को समझकर लोगों के काव्यशास्त्र-विषयक ज्ञान

---

(१) पदानां

के लिए काव्यात्मक वाणी के निर्माण प्रकार का यथावत् विवेचन तत्तद् नाट्यशास्त्र इत्यादि ग्रन्थों में किया है।

(काव्यशरीर लक्षणम्)

तैः शरीरं च काव्यानामलङ्काराश्च दर्शिताः[१] ।
शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली[२] ।।१०।।

अन्वय— तैः काव्यानां शरीरम् अलङ्काराश्च दर्शिताः । शरीरं तावत् इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली (विद्यते) ।

शब्दार्थ— तैः = उन (आचार्यों के) द्वारा । काव्यानाम् = काव्यप्रबन्धों का । शरीरम् = शरीर । अलङ्काराः च = और अलङ्कार । दर्शिताः = निरूपित किये गये हैं । शरीरं तावत् = (काव्य का) शरीर तो । इष्टार्थव्यवच्छिन्ना = अभिलषित अर्थ से समन्वित, अभिप्रेत अर्थ से युक्त । पदावली = पदों का समूह ।

अनुवाद— उन (प्राचीन भरतादि आचार्यों) के द्वारा काव्यप्रबन्धों का शरीर और अलङ्कार निरूपित किये गये हैं । अभिलषित (अभिप्रेत) अर्थ से युक्त पदावली (पद-समूह) (काव्य का) शरीर है ।

संस्कृतव्याख्या— दण्डिनात्र पूर्वार्द्धे काव्यस्य शरीरभूततत्त्वं तदलङ्करणसाधनभूताः अलङ्काराश्च प्रतिपादिताः उत्तरार्द्धे च काव्यशरीरलक्षणमपि प्रतिपादितम्– **तैरिति** । **तैः** प्राचीनैः भरताद्याचार्यैः स्वकाव्यशास्त्रग्रन्थेषु **काव्यानां** विविधानां काव्यप्रबन्धानां **शरीरं** शरीरभूतं तत्त्वं **अलङ्काराश्च** अनुप्रासोपमादयश्च **दर्शिताः** प्रतिपादिताः । काव्यशरीरं किमिति पुनः तल्लक्षणं निरूपितम्– **शरीरमिति । शरीरं तावत्** काव्यस्य शरीरं तु काव्ये प्रयुक्ता **इष्टार्थव्यवच्छिन्ना** इष्टाः अभिलषिताः सरसतया रमणीयतया च वर्णयितुमुद्दिष्टाः ये अर्थाः कविप्रतिभाप्रतिफलिताः सुन्दराः पदार्थाः तैः व्यवच्छिन्ना समन्विता **पदावली** पदसमूहः विद्यते । एवम् अभीष्टार्थयुक्तः हृद्यार्थविभूषित वा पदसमुदायः काव्यं काव्यशरीरं वेति निष्प्रचम् ।

विशेष—

(१) इस करिका के पूर्वार्ध में दण्डी ने काव्य के शरीर तत्त्व तथा उसके अलङ्करण के साधनभूत गुणों और अलङ्कारों की चर्चा किया है तथा उत्तरार्ध में काव्य-शरीर (काव्य) का लक्षण प्रस्तुत किया है ।

(२) प्राचीन भरतादि आचार्यों ने भी काव्य के शरीरतत्त्व और उसके अलङ्करणभूत अलङ्कारों का प्रतिपादन अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में किया है ।

---

(१) अलङ्कारश्च दर्शिताः ।

(२) पदावलिः

(३) दण्डी ने अभिलषित अर्थ से समन्वित पदावली को काव्य या काव्य का शरीर-तत्त्व माना है। इस प्रकार इस काव्य के लक्षण में उन्होंने स्पष्टतः अर्थ की अपेक्षा शब्द पर अधिक बल दिया है क्योंकि उनके अनुसार शब्दसमूह काव्य अथवा काव्य का शरीरतत्त्व है। अर्थ की अभिप्रेतता शब्दसमूह के काव्यत्व की केवल एक शर्त है। अग्निपुराण में भी इसी मत का अनुसारण किया गया है– 'सङ्क्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली'। दण्डी के काव्यशरीर के लक्षण का ही समर्थन पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ रसगङ्गाधर में किया है– 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है, किन्तु जहाँ दण्डी का इष्ट अर्थ केवल हृद्य अथवा विवक्षित अर्थ है वहीं जगन्नाथ का रमणीय अर्थ अलौकिक आनन्द का हेतु और रस-सापेक्ष है।

(४) दण्डी ने काव्य-शरीर का लक्षण तो किया है; किन्तु रस का समावेश उसमें नहीं है जिसे काव्य की आत्मा माना जाता हैं। विश्वनाथ के अनुसार तो रसात्मक वाक्य ही काव्य है– वाक्यं रसात्मकं काव्यम् (सा० द० १.३)।

(५) दण्डी ने काव्यशरीर का ही विवेचन किया है; क्योंकि जिस प्रकार शरीर से व्यक्ति की पहचान होती है उसी प्रकार काव्यशरीर से काव्य के स्वरूप को पहचाना जा सकता है। जिस प्रकार आत्मा शरीर के भीतर छिपी रहती है उसी प्रकार काव्य का आत्मास्वरूप रस काव्य के भीतर समाहित रहता है।

(६) आचार्य शब्दार्थयुगल को ही काव्य मानते हैं। जैसे कि—

भामह– शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।

वामन– काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते।

रुद्रट– शब्दार्थौ काव्यम्।

मम्मट– तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृतिः पुनः क्वापि।

आनन्दवर्धन– शब्दार्थशरीरं तावत्काव्यम्।

हेमचन्द्र– अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।

वाग्भट– शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालङ्कारौ च काव्यम्।

विद्यानाथ– गुणालङ्कारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ काव्यम्।

विद्याधर– शब्दार्थौ वपुरस्य तत्र विबुधैरात्माभ्यधायि ध्वनिः।

इन आचार्यों ने प्रायः गुण, अलंकार और निर्दोषता को अपने काव्यलक्षण में समाहित किया है।

(काव्यस्य त्रैविध्यम्)

गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत्त्रिधैव व्यवस्थितम् ।
पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा ।।११।।

अन्वय— तत् गद्यं पद्यं च मिश्रं च त्रिधा एव व्यवस्थितम्। (तत्र) चतुष्पदं पद्यम्। तत् च वृत्तं जतिः इति द्वधा।

शब्दार्थ— तत् = वह (काव्य)। गद्यम् = गद्य। पद्यम् = पद्य। मिश्र = (गद्य और पद्य का) मिश्रण (चम्पू)। त्रिधा एव = तीन प्रकार से ही। व्यवस्थितम् = उपनिबद्ध होता है, रचित होता है। चतुष्पदी = चार पाद हैं जिसमें ऐसा, चार पादो (चरणों) वाला। पद्यम् = पद्य (कहलाता है)। तत् च = और वह (पद्य)। वृत्तम् = वृत्त। जातिः = जाति। द्विधा = दो प्रकार (भेद) वाला होता है।

अनुवाद— वह (काव्य) गद्य, पद्य और मिश्र (गद्य और पद्य दोनों के मिश्रित रूप में) तीन प्रकार से उपनिबद्ध (रचित) होता है। (इसमें से) चार पादों (चरणों) वाला (काव्य) पद्य (कहलाता है) और वह पद्य वृत्त और जाति (भेद से) दो प्रकार का होता है।

संस्कृतव्याख्या— काव्यस्वरूपं निरूप्य तस्य प्रभेदान् प्रतिपादयत्यत्र-**गद्यं पद्यमिति**। **तत्** पूर्वं निरूपितं काव्यं **गद्यम्** अनियताक्षरात्मकं छन्दोरहितं गद्यरूपं **पद्यं** नियताक्षरात्मकं छन्दोबद्धं पद्यरूपं **मिश्रं** गद्यपद्योभयात्मकं मिश्ररूपं च एवं **त्रिधा एव** त्रिप्रकारात्मकम् एव **व्यवस्थितं** उपनिबद्धं रचितं वा भवतीति। तत्र **चतुष्पदी** चतुः पादं चरणं यत्र तादृशं काव्यं **पद्यं** पद्याभिधानं काव्यं भवति। **तत् च** तत् पद्यकाव्यं च **वृत्तं जातिरिति** भेदेन **द्विधा** द्विप्रकारकं भवतीति शेषः। तत्र अक्षरसङ्ख्यात्मकं वृत्तं मात्रासङ्ख्यात्मकं जातिः विद्यते।

विशेष—

(१) दण्डी ने स्वरूप की दृष्टि से काव्य को तीन प्रकार का बतलाया है— गद्य, पद्य और मिश्र। भाषा के स्वभाविक रूप को गद्य कहा जाता है जिसमें अक्षरों की संख्या अनियमित होती है। पादों अथवा चरणों में उपनिबद्ध छन्दोबद्ध काव्य को पद्य कहा जाता है गद्य और पद्य दोनों के मिश्रित रूप वाला काव्य मिश्र या चम्पू कहलाता है।

(२) प्रायः पद्य चार पादों (चरणों) वाला होता है, अतः इसे चतुष्पदी कहा जाता है। कभी-कभी पद्य में इससे कम या अधिक पाद भी मिलते हैं; किन्तु उनका प्रयोग प्रायः कम होता हैं। अतः उपलक्षण की दृष्टि से उनका भी समाहार चतुष्पदी में हो जाता है।

(३) छन्दोरूप की दृष्टि से पद्य दो प्रकार का होता है– वृत्त और जाति। 'वृत्त' छन्द वर्णिक भी कहलाता है क्योंकि इसमें पादों में अक्षरों की संख्या नियमित होती है। जैसे- शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता आदि। 'जाति' छन्द मात्रिक होता है क्योंकि इसके पादों में मात्राओं की संख्या नियमित होती है। जैसे– आर्या, गीति इत्यादि।

(४) कतिपय आचार्यों ने काव्य के दो भेदों को माना है– दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य। पुनः दृश्यकाव्य भेद के रूप में नाटक प्रकरण आदि तथा श्रव्यकाव्य के भेद में गद्य, पद्य और मिश्र काव्य को स्वीकार किया है।

(५) यद्यपि क्रम की दृष्टि से दण्डी ने गद्य का पहले निर्देश किया है; किन्तु लक्षण सर्वप्रथम पद्य का ही देते हैं। पद्य-निरूपण के पश्चात् इन्होंने गद्य का लक्षण प्रतिपादित किया है।

छन्दोविचित्यां सकलस्तत्प्रपञ्चो निदर्शितः।
सा विद्या नौस्तितीर्षूणां[1] गम्भीरं काव्यसागरम्॥१२॥

अन्वय— सकलः तत्प्रपञ्चः छन्दोविचित्यां निदर्शितः। सा विद्या गम्भीरं काव्यसागरं तितीर्षूणां नौः (विद्यते)।

शब्दार्थ— सकलः = सम्पूर्ण, सभी। तत्प्रपञ्चः = उन (वृत्त और जाति छन्दों) का विस्तार। छन्दोविचित्याम् = छन्दशास्त्र में, छन्दविषयक-ग्रन्थ में। **निदर्शितः** = निर्दिष्ट है, प्रतिपादित है, किया गया है। सा = वह। विद्या = (छन्द-विषयक-शास्त्र, छन्दप्रतिपादक) विद्या (शास्त्र)। गम्भीरं = गम्भीर, गहन, गूढ़। काव्यसागरं= काव्यरूपी समुद्र को। तितीर्षूणां = पार करने की इच्छा रखने वालों के लिए, तैरने की इच्छा रखने वालों के लिए, जानने की जिज्ञासा रखने वालों को लिए। नौः = नौका है, नाव (के समान) है।

अनुवाद— सभी उन (वृत्त और जाति छन्दों का) विस्तार (विवेचन) छन्दोविचित्ति (छन्दशास्त्र) में प्रतिपादित (किया गया) है। वह (छन्दविषयक) विद्या (शास्त्र) गहन काव्यरूपी समुद्र को जानने की इच्छा रखने वालों के लिए नाव (के समान) है।

संस्कृतव्याख्या— छन्ददृष्ट्या पद्यकाव्यस्य वृत्तजातिभेदेन प्रकारद्वयं निर्दिश्य छन्दविषयकज्ञानं छन्दशास्त्रे विहितमिति प्रतिपादयत्यत्र-**छन्दोविचित्यामिति। सकलः** सम्पूर्णः **तत्प्रपञ्चः** तेषां छन्दानां प्रपञ्चः विस्तारः विवेचनमित्यर्थः, **छन्दोविचित्यां** छन्दशास्त्रे **निदर्शितः** प्रतिपादितः। **सा विद्या** तत् छन्दशास्त्रे निदर्शितं ज्ञानं **गम्भीरं** गहनं

---

(१) नौविविक्षूणां, विवक्षणां

दुरवगाहं **काव्यसागरं** काव्यप्रबन्धरूपं समुद्रं **तितीर्षूणां** ज्ञातुं जिज्ञासूणां कृते **नौः** पोतः इव सहायकः भवतीति शेषः । यथा नावेन समुद्रस्य पारं गन्तुम् तत्रावगाहितुं वा शक्यते तथैव छन्दशास्त्रेण छन्दविषयकज्ञानं कर्त्तुं शक्यते । अत एव छन्दविषयकज्ञानस्य जिज्ञासुभिः कृते छन्दशास्त्रस्याध्ययनं कर्त्तव्यम् ।

विशेष—

(१) जिस प्रकार नौका लेकर ममुद्र में जाने वाले उसके भीतर से स्वाभीष्ट रत्नादि प्राप्त करने में समर्थ होते हैं, उसी प्रकार छन्दोंविचिति नामक छन्द-शास्त्रीय ग्रन्थ के ज्ञान से सम्पन्न व्यक्ति काव्य में शब्दार्थरूपी रत्न को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

(२) कतिपय विद्वानों के मत में दण्डी ने काव्यादर्श के परिशिष्ट के रूप में छन्दोविचिति नामक ग्रन्थ की रचना किया था, जो सम्प्रति अनुपलब्ध है, उसी ग्रन्थ का नामोल्लेख इस कारिका में हुआ है।।१२।।

(मुक्तकादीनां महाकाव्याङ्गत्वम्)

मुक्तकं कुलकं कोषः सङ्घात इति तादृशः ।
सर्गबन्धाङ्ग[1]रूपत्वादनुक्तः पद्यविस्तरः ।।१३।।

अन्वय— मुक्तकं, कुलकं कोषः सङ्घात इति तादृशः पद्यविस्तरः सर्गबन्धाङ्गरूपत्वात् अनुक्तः ।

शब्दार्थ— मुक्तकं = मुक्तक । कुलकं = कुलक । कोषः = कोष । सङ्घातः = सङ्घात । इति = ये । **तादृशः** = उसी प्रकार । पद्यविस्तरः = पद्य के विस्तार, पद्य के भेद । सर्गबन्धाङ्गरूपत्वात् = सर्गबन्ध (= महाकाव्य) के अङ्गभूत होने के कारण । अनुक्तः = कहा नहीं गया है, प्रतिपादन नहीं किया गया है, (विवेचन) नहीं किया गया है ।

अनुवाद— मुक्तक, कुलक, कोष, सङ्घात– ये उसी प्रकार (सर्गबन्ध महाकाव्य के अङ्ग हैं) सर्गबन्ध (महाकाव्य) के अङ्गभूत होने के कारण (इनका) विवेचन (इस ग्रन्थ में) नहीं किया गया है ।

संस्कृतव्याख्या— पद्यकाव्यस्य बहवो भेदाः सन्ति अतः तेषां निरूपणमत्र विस्तारभयाद् न क्रियते इत्यत्र प्रतिपादयति-**मुक्तकमिति** । **मुक्तकं, कुलकं कोषः सङ्घात** इत्यादयः तादृशः एवं प्रकारः **पद्यविस्तरः** पद्यकाव्यस्य भेदः **सर्गबन्धाङ्गरूपत्वात्** सर्गबन्धस्य महाकाव्यस्य अङ्गरूपत्वाद् अवयवरूपत्वाद् अस्मिन्ग्रन्थे विस्तारभयाद् **अनुक्तः** न विवेचितः । तत्र मुक्तकं नाम पद्यान्तरमुक्तमेकमेव पद्यम् । कुलकं नाम समा-

---

(१) बन्धांश

प्तिबोधक्रियान्वये परस्परैकवाक्यतापन्नः एकाधिकपद्यसमुदायः। कोषस्तावद् अन्योन्यनिरपेक्षाणां पद्यानां कोषः समूहः आकरग्रन्थः। सङ्घातस्तु एकेनैव पद्येन परिमितस्यार्थस्य कथानकवर्णनम्। तादृशः एवं प्रकारः पद्यविस्तरः पद्यभेदः महाकाव्याङ्गत्वाद् अत्र न वर्णितः।

विशेष—

(१) मुक्तक, कुलक, कोष, सङ्घात– इन पद्यविस्तारों (पद्य-भेदों) का इस ग्रन्थ में विवेचन नहीं किया गया है; क्योंकि ये महाकाव्य के अङ्गभूत हैं।

(२) मुक्तक पद्य वह पद्य होता है जिसमें अन्य पद्य की अपेक्षा नहीं होती– 'छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम्' (सा० द० ६.२१४ पू०)। जैसे- अमरुशतक। कुलक वाक्यान्वय की दृष्टि से परस्पर सम्बद्ध श्लोक समूह का नाम है। साहित्यदर्पण के अनुसार दो पद्यों की परस्पर अपेक्षा वाले पद्यसमूह युग्मक तथा तीन पद्यों वाले समूह सन्दानिक कहलाते हैं– द्वाभ्यां तु युग्मकं सन्दानिकं त्रिभिरिष्यते (सा० द० ६.११४ उ०)। परस्पर अपेक्षा से रहित पद्यसमूह कोष कहलाता है– 'कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षकः (सा० द० ६।३२९ पू०)। जैसे– आर्यासप्तशती इत्यादि। सङ्घात-परिमित कथानक वाला एक ही छन्द में प्रणीत बन्धात्मक काव्य होता है। जैसे मेघदूत इत्यादि।

(महाकाव्यपरिचयः)

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥१४॥

अन्वय— महाकाव्यं सर्गबन्धः (भवति) तस्य लक्षणम् उच्यते। आशीः नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशः वा तन्मुखं भवति।

शब्दार्थ— महाकाव्यं = महाकाव्य (नामक रचनाविधा)। सर्गबन्धः = सर्गों में निबद्ध (विभक्त) होता है। तस्य = उस (महाकाव्य) का। लक्षण = परिभाषा, परिचय, चिह्न। उच्यते = कहा जा रहा है, बतलाया जा रहा है, प्रतिपादित किया जा रहा है। आशीः = शुभाशंसा, आशीर्वचन। नमस्क्रिया = नमस्कार। वस्तुनिर्देशः वा = अथवा प्रतिपाद्यविषय का निर्देश (= सूचन)। तन्मुखं = उस (महाकाव्य) का प्रारम्भ (होता है)।

अनुवाद— महाकाव्य सर्गों में निबद्ध (विभक्त) होता है। उस (महाकाव्य) का लक्षण (= परिचय, परिभाषा) कहा (प्रतिपादित किया) जा रहा है। शुभाशंसा (आशीर्वचन), नमस्कार अथवा (प्रतिपाद्य) विषय के निर्देश (सूचन) द्वारा उस (महाकाव्य) का प्रारम्भ होता है।

संस्कृतव्याख्या— पूर्वसङ्केतितस्य महाकाव्यस्य लक्षणं तन्मुखञ्च प्रतिपादयत्यत्र-**सर्गबन्ध इति**। **महाकाव्यं** महाकाव्यं नाम प्रबन्धः **सर्गबन्धः** सर्गः प्रबन्धावान्तर-प्रकरणविषेशः बन्धः बन्धनं रचना वा यस्य तादृशः सर्गबन्धः भवतीति शेषः। यत्र प्रकरणानि सर्गपदेनाभिधीयते तादृशी रचना माहाकाव्यनाम्ना ख्याप्यत इत्यर्थः। **तस्य** पूर्वोक्तस्य महाकाव्यस्य **लक्षणं** स्वरूपं परिचयः परिभाषा वा **उच्यते** वक्ष्यते प्रतिपाद्यते इत्यर्थः। **आशीः** शुभाशंसनरूपम् आशीर्वचनं **नमस्क्रिया** देवतादिनिमित्तं अभिवादनं **वस्तुनिर्देशो वा** अथवा वस्तुनः प्रतिपाद्यविषयस्य निर्देशः प्रकारान्तरेण सूचनं वा **तन्मुखं** तस्य महाकाव्यस्य मुखं प्रारम्भः भवति। आशीर्वचनेन नमस्क्रियया प्रतिपाद्य-विषयवस्तुसङ्केतेन वा महाकाव्यरचनायाः प्रारम्भः भवतीत्यर्थः।

विशेष—

(१) महाकाव्य को सर्गबन्ध भी कहा जाता है क्योंकि उनकी रचना सर्गों में विभक्त करके होती है। दण्डी ने महाकाव्य के सर्गों की संख्या के विषय में कोई निर्देश नहीं किया है किन्तु परवर्ती काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने महाकाव्य में सर्गों की संख्या कम से कम आठ होना निर्धारित किया है। विश्वनाथ के अनुसार महा-काव्य में आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द में उपनिबद्ध पद्य होते हैं। सर्गान्ति में छन्द परिवर्तन वाला पद्य हांता है। सर्ग के अन्त वाले पद्य में आगामी सर्ग के कथावस्तु का निर्देश होना चाहिए। सर्ग न तो बहुत बड़े होने चाहिए और न तो बहुत छोटे।

(२) महाकाव्य का प्रारम्भ मङ्गलाचरण अथवा विषयनिर्देशन से होता है। मङ्गलाचरण आशीर्वादात्मक या नमस्कारात्मक होता है। आशीर्वाद का अर्थ है- अपने अथवा स्वेष्ट लोगों के शुभ की इच्छा प्रकट करना। जैसे- कीचकवध का आरम्भ आशीर्वाद से होता है। नमस्कार का तात्पर्य है- अपने अथवा लोगों के कल्याण के लिए अपने अभीष्ट देव, गुरु या माता-पिता से प्रार्थना करना। जैसे रघुवंश का प्रारम्भ शिव और पार्वती की वन्दना से होता है। विषयनिर्देश का अर्थ है- कथाभाग की सूचना देना। जैसे- किरातार्जुनीय, शिशुपालवध का प्रारम्भ वस्तु-निर्देश से होता है।

(३) संस्कृत के अधिकांश महाकाव्य वस्तुनिर्देश से ही प्रारम्भ होते हैं।

इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलोपेतं[१] चतुरोदात्तनायकम्॥१४॥

---

(१) फलावत्तं

अन्वय— इतिहासकथोद्भूतम् इतरत् वा सदाश्रयं चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्त-नायकं (भवति)।

शब्दार्थ— इतिहासकथोद्भूतम् = ऐतिहासिक कथा पर आधारित। इतरत् वा = अथवा (इतिहास कथा से) अन्य। सदाश्रयं = उत्कृष्ट कथानक या पात्र पर आश्रित। चतुर्वर्गफलोपेतम् = (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के फल (की प्राप्ति) से युक्त। चतुरोदात्तनायकम् = चतुर (व्यवहारकुशल) और उदात्त नायक वाला, चतुर और उदात्त नायक है जिसमें ऐसा।

अनुवाद— (महाकाव्य) ऐतिहासिक कथा पर आधारित अथवा (ऐतिहासिक कथा से) अन्य उत्कृष्ट कथानक या पात्र पर आश्रित, पुरुषार्थ-चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के फल (की प्राप्ति) से युक्त तथा व्यवहारकुशल (चतुर) और उदात्त नायक वाला होता है।

संस्कृतव्याख्या— महाकाव्यस्य सामान्यलक्षणं निर्दिश्यात्र तस्य विशिष्टलक्षणं प्रतिपादयति–**इतिहासेति**। महाकाव्यम् **इतिहासकथोद्भूतम्** ऐतिहासिककथानकमाधृत्य प्रबद्धम् **इतरत् वा** ऐतिहासिककथानकं विहाय अन्यद्वा **सदाश्रयं** प्रसिद्धं सत्कथानकं सत्पात्रं वा आश्रयेण प्रवृत्तं महाकाव्यं भवति। तच्च **चतुर्वर्गफलोपेतं** चतुर्वर्गः धर्मार्थकाममोक्षरूपः पुरुषार्थचतुष्टयः तद्रूपं फलं तेन उपेतं समन्वितं धर्मार्थकाममोक्षफल-प्रदमित्यर्थः, **चतुरोदात्तनायकं** चतुरः व्यवहारकुशलः उदात्तः धीरोदात्तः नायकः प्रधान-पुरुषः नेता यस्मिन् तादृशं महाकाव्यं भवति।

विशेष—

(१) रामायण और महाभारत ऐतिहासिक ग्रन्थ माने जाते हैं। ऐतिहासिक कथा में पौराणिक कथानकों का भी अन्तर्भाव अपेक्षित है। रघुवंश, कुमारसम्भव, किराता-र्जुनीय, शिशुपालवध इत्यादि महाकाव्यों का कथानक इतिहास और पुराणों की कथाओं पर आधारित है। इनमें वर्णित पुरुष को महाकाव्यों में नायक बनाया गया है। यह कोई अनिवार्य प्रतिबन्ध नहीं है। इतिहास-प्रसिद्ध कथानक के अतिरिक्त भी किसी सत्पुरुष के चरित के आधार पर महाकाव्य की रचना होती है। जैसे बुद्ध के कथानक को आधार बनाकर 'बुद्धचरित' और सौन्दरनन्दमहाकाव्य की रचना हुई है।

(२) महाकाव्य में पुरुषार्थचतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फल का वर्णन होना अभीष्ट होता है। साहित्यदर्पण के अनुसार महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– इन चार पुरुषार्थों का तथा इनमें से एक के फल का वर्णन प्रधान प्रयोजन होता है– 'चत्वारस्तत्र वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् (सा० द० ६।३१८ उ०)

किन्तु दण्डी के अनुसार महाकाव्य में चारों पुरुषार्थों के फल का होना चाहिए।

(३) महाकाव्य का नायक दक्ष और उदात्त (धीरोदात्त श्रेणी) वाला होता है। शास्त्रकारों ने नायक के चार भेद माना है– धीरोदात्त, धीरोद्धत्त धीरललित और धीरप्रशान्त। इनमें से महाकाव्य के नायक के रूप में धीरोदात्त का ही निर्देश किया गया है। अन्य नेताओं के विषय में दण्डी मौन हैं। कतिपय विद्वानों के अनुसार 'उदात्त' पद उपलक्षण है। इससे महाकाव्य के नायक के रूप में नायक के अन्य तीन प्रकारों धीरोद्धत्त, धीरललित और धीरप्रशान्त का भी ग्रहण हो जाता है। १.२१-२२ में दण्डी ने नायक के साथ प्रतिनायक को भी महाकाव्य में अभीष्ट माना है।

नगरार्णवशैलर्त्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः।।१६।।

अन्वय— (तद् महाकाव्यं) नगरार्णवशैलर्त्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः (युक्तं भवति)।

शब्दार्थ— नगरार्णवशैलर्त्तुचन्दार्कोदयवर्णनैः = नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय और सूर्योदय के वर्णनों से। उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः = उद्यान-क्रीड़ा (उद्यान विहार, उपवन विहार), जल-कीड़ा (जल-विहार), मदिरापान और रतिविषयक उत्सवों (= सम्भोगशृङ्गार) के वर्णन से युक्त होता है।

अनुवाद— (वह महाकाव्य) उद्यानक्रीडा, जल-विहार, मदिरापान और रतिविषयक उत्सवों (सम्भोगशृंगार) के वर्णनों से युक्त होता है अर्थात् महाकाव्य में इन उद्यान कीड़ा इत्यादि विषयों का समावेश रहता है।

संस्कृतव्याख्या— तद्महाकाव्यं **नगरार्णवशैलर्त्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः** नगरं नायकाध्युषितं पुरम् अर्णवः समुद्रः शैलः पर्वतः; ऋतुः वसन्तादयः, चन्द्रार्कोदयः चन्द्रोदयः सूर्योदयश्च एतेषां वर्णनैः अथ च **उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः** उद्यानक्रीडा उपवनक्रीडा सलिलक्रीडा जलविहारः, मधुपानं मदिरापानं रतोत्सवः सुरतोत्सवः इत्येतैः समावेशितं भवति।

विशेष—

(१) प्रसङ्गवशात् महाकाव्य में नगर, समुद्र, पर्वत इत्यादि का वर्णन होता है। जैसे शिशुपालवध के तृतीय सर्ग में द्वारका नगरी का, रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में समुद्र का, शिशुपालवध के ही चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत का, कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में वसन्त ऋतु का वर्णन, किरातर्जुनीय के नवम तथा शिशुपालवध के नवम सर्ग में चन्द्रोदय और सूर्योदय का हुआ है। उपवनविहार जलविहार का

भी वर्णन शिशुपालवध के अष्टम सर्ग में और मधुपान का समावेश किरातार्जुनीय के नवम सर्ग में हुआ है।

(२) प्रसङ्गवशात् ही महाकाव्य में सुरतोत्सव का भी वर्णन किया जाता है। सुरतोत्सव में सम्भोगश‍ृगार के साथ-साथ पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण-भेद वाले विप्रलम्भशृङ्गार, गान्धर्वादि भेद से आठ प्रकार के विवाहों तथा पुत्रजन्म इत्यादि का समावेश होता है। इसका सङ्केत शास्त्रकार ने अगली कारिका में दिया है।

विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ।।१७।।

अन्वय— (महाकाव्यं) विप्रलम्भैः विवाहैः च कुमारोदयवर्णनैः मन्त्रदूतप्रयाणाजि-नायकाभ्युदयैः अपि (समन्वितः भवति)।

शब्दार्थ— विप्रलम्भैः = (पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण भेद वाले) विप्रलम्भशृङ्गारों से। विवाहैः च = और (गान्धर्वादि अष्टविध) विवाहों से। कुमा-रोदयवर्णनैः = पुत्रोत्पत्ति के वर्णन से। मन्त्रदूतप्रयाणजिनायकाभ्युदयैः अपि = (राज-नैतिक) मन्त्रणा, दूत (सम्प्रेषण), (विजय) यात्रा, युद्ध और नायक के अभ्युदय (विजय) (के वर्णनों) से भी युक्त होता है।

अनुवाद— महाकाव्य (पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण भेद वाले) विप्रलम्भ शृङ्गारों से, और (गान्धर्वादि अष्टविध) विवाहों से, पुत्रोत्पत्ति के वर्णन से तथा (राज-नैतिक) मन्त्रणा (परामर्श) दूत-(सम्प्रेषण), (विजय-) यात्रा, युद्ध और नायक के अभ्युदय (विजय) के वर्णनों वाला होता है।

संस्कृतव्याख्या— तन्महाकाव्यं **विप्रलम्भैः** पूर्वानुरागमान-प्रवास-करुण-भेदेन चतुष्प्रकारैः विप्रलम्भशृङ्गारैः **विवाहैः च** गान्धर्वाद्यष्टधा परिणयैः **कुमारोदयवर्णनैः** पुत्रोत्पत्ति-वर्णनैः **मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैः अपि** मन्त्रः राजनैतिकगुप्तमन्त्रणा राज्ञो नायकस्य वा मित्रैर्मन्त्रिभिः सह परामर्शः दूतः राजदूतः प्रयाणः विजयार्थयात्रा आजिः युद्धं नायकाभ्युदयः विजयादिना नायकस्य नेतुः अभ्युदयः समुन्नतिः इत्येतैः विषयैः समन्वितं भवति।

विशेष—

(१) **विप्रलम्भ**– कभी न मिले हुए या मिलकर वियुक्त दो तरुणों (नायक और नायिका) का परस्पर जो अनुराग अभीष्ट आलिङ्गन इत्यादि के न प्राप्त होने पर बढ़ता रहता है, वह विप्रलम्भशृङ्गार कहलाता है। वह चार प्रकार का कहा गया है– पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण। समागम से पहले दर्शन अथवा श्रवण से

उत्पन्न प्रेम पूर्वानुराग कहलाता है। अभीष्ट आलिङ्गन इत्यादि चेष्टाओं के प्रतिषेध की इच्छा से बार-बार कहा गया 'मत, ऐसा नहीं' इस प्रकार से निरोध करना मान कहलाता है। पहले मिले हुए युवकों (नायक और नायिका) के उपभोग में देशान्तर-गमन इत्यादि के कारण व्यवधान प्रवास कहलाता है। दोनों (नायक और नायिका) में से एक के मरने पर पुनः समागम की आशा उत्पन्न होने तथा करुण के आवर्तन होने से उसके पुनर्जीवित होने के समय करुण विप्रलम्भ होता है। (द्रष्टव्य रसार्णवसुधाकर २.१७१-२१९)।

(२) 'न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते' अर्थात् विप्रलम्भशृङ्गार के बिना सम्भोग-शृङ्गार की पुष्टि नहीं होती। अतः सम्भोगशृङ्गार की पुष्टि के लिए महाकाव्य में विप्रलम्भशृङ्गार का वर्णन अपेक्षित है।

(३) भारतीय परम्परा में विवाह आठ प्रकार के बतलाए गये हैं– आसुर, राक्षस, दैव, गान्धर्व, प्राजापत्य, ब्रह्म, पिशाच- इन विवाहों में से किसी का वर्णन होना चाहिए।

अलङ्कृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः[1] सुसन्धिभिः ॥१८॥

अन्वय— अलंकृतम् असंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरं अनतिविस्तीर्णैः सर्गैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः (युक्तं महाकाव्यं भवति)।

शब्दार्थ— अलंकृतम् = (इन नगर से लेकर नायकभ्युदय तक निर्दिष्ट विषयों से) अलंकृत (सुशोभित)। असंक्षिप्तम् = अतिसंक्षेप से रहित, अपेक्षित विस्तार से युक्त। रसभावनिरन्तरम् = रसों और भावों से परिपूर्ण। अनतिविस्तीर्णैः = सामान्य (साधारण) विस्तार वाले। सर्गैः = सर्गों से युक्त। श्रव्यवृत्तैः = सुनने में (रमणीय = सुखद) छन्दों (वृत्तों) से युक्त। सुसन्धिभिः = सुसन्धियों (परस्पर सम्बद्ध और विविध घटनाओं) से समाविष्ट (समाहित)।

अनुवाद— (महाकाव्य नगर से लेकर नायकाभ्युदय तक निर्दिष्ट विषयों से) अलङ्कृत (शोभायमान), अपेक्षित-विस्तार से युक्त (अतिसंक्षेप से रहित), रसों और भावों से परिपूर्ण, सामान्य (साधारण) विस्तार वाले सर्गों से युक्त, सुनने में रमणीय (सुखद) छन्दों (वृत्तों) से युक्त और सुसन्धियों (परस्परसम्बद्ध और विविध घटनाओं) से समाविष्ट होता है।

संस्कृतव्याख्या— महाकाव्यं नगरार्णवादिना वर्णितेन विषयेन **अलङ्कृतं** शोभायमानम् **असंक्षिप्तम्** अतिसंक्षेपरहितम् अपेक्षितविस्तारसंयुतमित्यर्थः **रसभावनिरन्तरं**

---

(१) श्राव्यवृत्तैः

रसैः शृङ्गारादिभिः भावैः प्रामुख्येण अभिव्यक्तैः सञ्चारिभावैः च निरन्तरं परिपूर्णम्, **अनतिविस्तीर्णैः** नाधिकविस्तृतैः सामान्यविस्तारयुक्तैरित्यर्थः **सर्गैः** विभक्तं **श्रव्यवृत्तैः** कर्णसुखदच्छन्दैः उपनिबद्धं **सुसन्धिभिः** परस्परं सम्यग्रूपेण संहितैः तथा च विविध-वृत्तान्तैसमान्वितं भवति ।

विमर्श—

(१) असंक्षिप्त- महाकाव्य का प्रतिपाद्य विषय अतिसंक्षिप्त नहीं होना चाहिए। उसके कथानक में अपेक्षित विस्तार होना चाहिए।

(२) आठ रस होते हैं- शृङ्गार, हास्य, वीर, अद्भुत, रौद्र, करुण, बीभत्स और भयानक। जैसा कहा गया है-

अष्टधा स च शृङ्गारहास्यवीराद्भुता अपि ।।
रौद्रः करुणबीभत्सौ भयानक इतीरितः ।

(रसार्णवसुधाकर २.१६६ उ०- १६७ पू०)

रसवदलङ्कार के सन्दर्भ में दण्डी ने भी इन्हीं आठ रसों का उल्लेख काव्यादर्श २.२८०-९२ में किया है।

(३) भावों के अन्तर्गत रति, हास, उत्साह, विस्मय, क्रोध, शोक, जुगुप्सा, और भय- ये आठ स्थायिभावों, प्रमुखतया अभिव्यक्त निर्वेद विषाद, दैन्य इत्यादि तैतीस व्यभिचारि भावों और देवता इत्यादि से सम्बन्धित अनुराग आदि भावों को माना जाता है।

(४) अनतिविस्तीर्ण सर्ग- महाकाव्यों के सर्ग न तो अधिक छोटे-छोटे होने चाहिए न तो अधिक बड़े-बड़े जैसा कि साहित्यदर्पणकार ने कहा है- नाति स्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गाः अष्टाधिका इह (सा० द० ६.३२० उ०)।

(५) श्रव्यवृत्त-महाकाव्य में प्रयुक्त छन्द कानों को रुचिकर लगने वाले होने चाहिए। उनमें हतवृत्तता इत्यादि दोष नहीं होना चाहिए।

(६) सुसन्धियों का तात्पर्य नाट्यशास्त्रों में प्रतिपादित मुख, प्रतिमुख इत्यादि सन्धियों से कदापि नहीं है; क्योंकि सर्ग एवं सर्गबद्धमहाकाव्य में इनकी स्थिति अभीष्ट नहीं है। यहाँ सुसन्धि का तात्पर्य परस्पर सम्बद्ध और विविध घटनाओं के संयोजन से है।

सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम् ।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलङ्कृति ।।१९।।

अन्वय— सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैः उपेतं सदलङ्कृति लोकरञ्जकं काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायेत।

शब्दार्थ— सर्वत्र = प्रत्येक सर्ग में। भिन्नवृत्तान्तैः उपेतं = भिन्न-भिन्न घटनाओं

(के वर्णन) से युक्त अथवा अन्त (= सर्गान्त) में भिन्न छन्दों से युक्त। **सदलङ्कृति** = अलङ्कारों (अनुप्रासादि शब्दालङ्कारों और उपमादि अर्थालङ्कारों) के सुष्ठु प्रयोग से युक्त (सुसज्जित)। **लोकरञ्जकं** = सहृदय लोगों को अनुरञ्जित करने वाला, श्रोताओं अथवा पाठकों को आकर्षित करने वाला, लोकाराधक, लोकानुरञ्जक। काव्यं = महाकाव्य। कल्पान्तरस्थायि = चिरस्थायी, कल्पान्त तक यशस्वी, युगान्तर-पर्यन्त कीर्ति वाला। जायेत = होता है।

अनुवाद— प्रत्येक सर्ग में भिन्न-भिन्न घटनाओं (के वर्णन) से युक्त अथवा सर्गान्त में (प्रयुक्त) भिन्न छन्दों से समन्वित, अलङ्कारों (अनुप्रासादि शब्दालङ्कारों और उपमादि अर्थालङ्कारों) के सुष्ठु प्रयोग से सुसज्जित लोकानुरञ्जक महाकाव्य चिरस्थायी यश वाला होता है।

संस्कृतव्याख्या— **सर्वत्र** प्रतिसर्गे **भिन्नवृत्तान्तैः उपेतं** विविधवृन्तान्तैः समन्वितम् अथवा सर्वेषां सर्गाणां अन्ते समाप्तौ भिन्नेन प्रयुक्तछन्दान्येन छन्दसा युक्तं **सदलङ्कृति** सुष्ठुप्रकारेण शब्दार्थशोभाधायकद्वारा रसोपकारिका: अलङ्कृतयः उपमादयः अलङ्कारा यत्र तादृशं **लोकरञ्जकं** लोकानुरञ्जकं **काव्यं** महाकाव्यं **कल्पान्तरस्थायि** चिरस्थायि यशदायकं **जायेत** भवेत।

विशेष—

(१) भिन्नवृत्तान्त– महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में भिन्न-भिन्न घटनाओं का वर्णन होना चाहिए। कतिपय विद्वानों के अनुसार प्रत्येक सर्ग के अन्त में सम्पूर्ण सर्ग में प्रयुक्त छन्द से भिन्न छन्द का प्रयोग होना चाहिए– यह अर्थ है। संस्कृत महाकाव्यों के सर्गों के विषय में ये दोनों लक्षण घटित होते हैं।

(२) महाकाव्य में रसानुकूल अलङ्कारों का भी प्रयोग अपेक्षित है।

(३) महाकाव्य की एक बड़ी विशेषता है– लोकानुरञ्जकता। लोकानुरञ्जन के द्वारा ही सहृदय महाकाव्य की ओर आकृष्ट होता है।

न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति।
यद्युपात्तेषु सम्पत्तिराराधयति तद्विदः ॥२०॥

अन्वय— यदि उपात्तेषु सम्पत्तिः तद्विदः आराधयति अत्र कैश्चित् अङ्गैः न्यूनम् अपि काव्यं न दुष्यति।

शब्दार्थ— यदि = यदि। उपात्तेषु (महाकाव्य विशेष में वर्ण्य-विषय के रूप में) गृहीत तत्त्वों में। सम्पत्तिः = (विद्यमान) चारुता (रमणीयता)। तद्विदः = उन (काव्य के) ज्ञाताओं (काव्यरसिकों) को, काव्यमर्मज्ञों को। आराधयति = प्रसन्न करती है,

आकृष्ट करती है, प्रभावित करती है। अत्र = इस (ग्रन्थ) में (निर्दिष्ट, प्रतिपादित)। कैश्चित् = कतिपय, कुछ। अङ्गैः = अङ्गों से, (महाकाव्य-विषयक) तत्त्वों से। न्यूनम् अपि = हीन भी, रहित भी। काव्यं = महाकाव्य। न दुष्यति = दूषित नहीं होता, (महाकाव्यत्व) बाधित नहीं होता।

अनुवाद— यदि (महाकाव्य विशेष में वर्ण्यविषय के रूप में) गृहीत तत्त्वों में (विद्यमान) रमणीयता (चारुता) काव्यमर्मज्ञों (काव्य रसिकों) (के मन) को प्रसन्न (प्रभावित, आकृष्ट) करती है तो इस (ग्रन्थ) में (निर्दिष्ट; प्रतिपादित) कतिपय (कुछ) अङ्गों (महाकाव्यविषयक तत्त्वों) से रहित भी महाकाव्य दूषित नहीं होता अर्थात् उसका महाकाव्यत्व बाधित नहीं होता।

संस्कृतव्याख्या— पूर्वप्रतिपादितेषु महाकाव्यत्तत्त्वेषु सर्वेषां तत्त्वानां महाकाव्य-विशेषे नियोजनमावश्यकमथवा तेषु कतिपयतत्त्वहीनमपि महाकाव्यं भवितुमर्हतीति प्रतिपादयत्यत्र-**न्यूनमिति**। **यदि उपात्तेषु** यदि महाकाव्यविशेषे वर्ण्यविषयरूपेषु गृहीतेषु तत्त्वेषु **सम्पतिः** पूर्णत्वजनिता रमणीयता **तद्विदः** काव्यमर्मज्ञान् **आराधयति** समाकर्षयति तत् **अत्र** अस्मिन्ग्रन्थे प्रतिपादितेषु **यैः कैश्चित्** कतिपयैः **अङ्गै** महाकाव्यविषयकतत्त्वैः **न्यूनम् अपि** हीनम् अपि **काव्यं** महाकाव्यं **न दुष्यति** महाकाव्यत्वं न जहाति। महा-काव्येषु समाविष्टानां सर्वेषां ग्रन्थेऽस्मिन् प्रतिपादितानां महाकाव्यविषयकतत्त्वानां कति-पयतत्त्वहीनमपि महाकाव्यविशेषं महाकाव्यं भवति यदि तत्र वर्णयितुमुपात्ताः पदार्थाः सुष्ठुवर्ण्यमानाः सन्तः काव्यमर्मज्ञान् समाराधयितुं समर्थाः भवन्ति।

विशेष—

(१) महाकाव्य में वर्णन किये जाने वाले तत्त्वों का निर्देश दण्डी ने कर दिया है। उन प्रतिपादित तत्त्वों में से सभी तत्त्वों का महाकाव्य में वर्णन होना अनिवार्य नहीं है। उनमें से कतिपय तत्त्वों की कमी भी महाकाव्य में हो सकती है; किन्तु महाकाव्य में वर्णित विषयों में चारुता का होना आवश्यक है। वर्ण्यविषय की चारुता होने पर कतिपय प्रतिपादित तत्त्वों के अभाव में उसके महाकाव्यत्व की हानि नहीं होती है। ध्यातव्य है कि कतिपय तत्त्वों (विकारों) के अभाव के कारण महाकाव्य खण्डकाव्य का रूप नहीं धारण कर सकता। यद्यपि खण्डकाव्य महाकाव्य का एक देशानुसारी रूप है– 'खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च' (सा० द० ६.३२९) तथापि खण्डकाव्य में एक कथाखण्ड का वर्णन होने से उसे महा-काव्य की श्रेणी में रखा नहीं जा सकता; क्योंकि महाकाव्य में वर्णित समग्र जीवन के एक भाग का पूर्णरूपेण वर्णन होता है। महाकाव्य और खण्डकाव्य में चमत्कारभिन्नता भी होती है। अतः एक दो तत्त्वों की कमी रहने पर भी महा-काव्य खण्डकाव्य नहीं हो सकता।

(प्रतिपाद्यविषयवर्णनक्रमः)

गुणतः प्रागुपन्यस्य नायकं तेन विद्विषाम् ।
निराकरणमित्येष मार्गः प्रकृतिसुन्दरः ।।२१।।

अन्वय— प्राक् नायकं गुणतः उपन्यस्य तेन विद्विषां निराकरणं एषः मार्गः प्रकृतिसुन्दरः (विद्यते)।

शब्दार्थ— प्राक् = सर्वप्रथम, पहले। नायकं = नायक को, नेता को, प्रधान-पुरुष को। गुणतः = गुणों से, श्रेष्ठता से, प्रशंसा से। उपन्यस्य = उपस्थापित करके, प्रस्तुत करके। तेन = उस (नायक) के द्वारा। विद्विषां = शत्रुओं के, प्रतिनायकों के। निराकरणं = विनाश को, पराभव को, पराजय को। एषः = यह (वर्णित)। मार्गः = (वर्णन का) क्रम (प्रकार)। प्रकृतिसुन्दरः = स्वभावतः रमणीय (हृदयाकर्षक)।

अनुवाद— (महाकाव्य में) सर्वप्रथम नायक को गुणों से उपस्थापित (प्रस्तुत) करके (अर्थात् पहले नायक के गुणों का वर्णन करके) (पुनः) उस (नायक) के द्वारा शत्रुओं (प्रतिनायकों) के विनाश (पराजय) को (प्रस्तुत करना— नायक के उत्कर्ष को प्रतिपादित करना) यह (वर्णन-) क्रम स्वभावतः रमणीय (हृदयाकर्षक) है।

संस्कृतव्याख्या— महाकाव्यस्य प्रतिपाद्यविषयेषु प्रधानविषयः नायकस्योत्कर्षः द्विधा वर्णयितुं शक्यते। तत्र प्रथमं प्रतिपादयत्यत्र– **गुणतः इति। प्राक्** प्रथमं **नायकं** नेतारं **गुणतः** तस्य गुणानां वर्णनं **उपन्यस्य** अभिधाय ततः **तेन** नायकेन विद्विषां शत्रूणां प्रतिनायकानामित्यर्थः, **निराकरणं** पराभवम् इति **एषः** प्रोक्तः, **मार्गः** नायकाभ्युदयवर्णनक्रमः **प्रकृतिसुन्दरः** प्रकृत्या स्वभावेन सुन्दरः हृदयाकर्षकः सर्वोत्कृष्टः इत्यर्थः विद्यते इति शेषः। काव्यस्य मुख्योद्देश्यं सदुपदेशः स च सत्पुरुषाभ्युदस्य असत्पुरुषाविनिपातस्य प्रतिपादनेनैव सम्भवति। तत्कृते तयोः सत्पुरुषासत्पुरुषयोः क्रमेण वर्णनमपेक्षितम्। तद्विषयं द्विधा भवितुं शक्यते। तत्र प्रथमं तावत् नायक-गुणस्य वर्णनं कृत्वा ततः परं नायकेन प्रतिनायकपराभववर्णनं कर्त्तव्यम्। यथा रामायणे प्रथमं रामस्य वर्णनं तत्पश्चात् रामेण रावणस्योच्छेदकथा वर्णिता।

विशेष—

(१) महाकाव्य का मुख्य प्रतिपाद्य विषय नायक के उत्कर्ष और प्रतिनायक के अपकर्ष का वर्णन होता है। इस वर्णन के दो क्रम हैं। प्रथम क्रम में सर्वप्रथम नायक के गुणों की महिमा का प्रतिपादन होता है। पुनः नायक के द्वारा प्रतिनायक के विनाश को वर्णित करके नायक की उत्कृष्टता को दिखलाया जाता है। इस क्रम के वर्णन का उदाहरण रामायण है।

वंशवीर्यश्रुतादिनि वर्णयित्वा रिपोरपि ।
तज्जयान्नायकोत्कर्षवर्णनं च धिनोति नः ।।२२।।

अन्वय— रिपोः अपि वंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा तज्जयात् नायकोत्कर्षवर्णनं च नः धिनोति ।

शब्दार्थ— रिपोः अपि = (नायक के गुणों का वर्णन करने से पहले) शत्रु के भी । वंशवीर्यश्रुतादीनि = वंश (कुलपरम्परा), पराक्रम और शास्त्रज्ञान इत्यादि को (का) । वर्णयित्वा = वर्णन करके, प्रतिपादन करके, प्रस्तुत करके । तज्जयात् च = और पुनः (नायक द्वारा) उस (शत्रु) के पराजय (पराभाव) (के वर्णन) से । नायकोत्कर्ष-वर्णनं = (नायक के) उत्कर्ष (उत्कृष्टता, श्रेष्ठता) का वर्णन (प्रतिपादन, प्रस्तुतीकरण) । नः = हमें । धिनोति = परितुष्ट करता है, प्रसन्न (आनन्दित) करता है; रमणीय (रुचिकर) लगता है ।

अनुवाद— (नायक के गुणों का वर्णन करने से पहले) शत्रु (प्रतिनायक) के भी वंश (कुलपरम्परा), पराक्रम और शास्त्रज्ञान इत्यादि का वर्णन करके (तत्पश्चात् नायक के द्वारा) उस (शत्रु = प्रतिनायक) के पराजय (पराभव) के वर्णन से नायक के उत्कर्ष के वर्णन (का क्रम भी) हमें परितुष्ट करता है (रुचिकर लगता है) ।

संस्कृतव्याख्या— महाकाव्ये नायकोत्कर्षप्रदर्शनस्य द्वितीयं क्रमं प्रतिपादयत्यत्र– **वंशवीर्येति** । **रिपोः अपि** शत्रोः अपि प्रतिनायकस्यापीत्यर्थः, **वंशवीर्यश्रुतादीनि** वंशः कुलपरम्परा श्रुतं शास्त्रज्ञानं इत्यादयः ये गुणाः तान् **वर्णयित्वा** प्रतिपाद्य **तज्जयात् च** नायकद्वारा तस्य तादृशस्य शत्रोः प्रतिनायकस्य जयात् उच्छेदात् **नायकोत्कर्ष-वर्णनं** नायकस्य प्रधानपात्रस्य उत्कर्षवर्णनम् उत्कृष्टतायाः कथनं **नः** अस्मान् **धिनोति** प्रीणयति । नायकोत्कर्षवर्णनस्य द्वितीयः क्रमः इत्थं विद्यते यत् नायकगुणवर्णनात् पूर्वं प्रतिनायकस्य कुलपराक्रमशास्त्रज्ञानान् महाकाव्ये उपस्थाप्य ततः परं नायकद्वारा प्रति-नायकस्य पराभववर्णनेन नायकस्योत्कर्षविषयस्य वर्णनं क्रियते ।

विशेष—

(१) इस कारिका में दण्डी ने महाकाव्य में नायक के उत्कर्ष के वर्णन का द्वितीय क्रम प्रतिपादित किया है । प्रथम क्रम में सर्वप्रथम नायक के गुणों का वर्णन, तत्पश्चात् उसके द्वारा शत्रु (प्रतिनायक) के विनाश के वर्णन से नायक की उत्कृष्टता को उपस्थापित करने का निर्देश दिया है । द्वितीय क्रम में सर्वप्रथम शत्रु (प्रतिनायक) के वंश, पराक्रम, ज्ञान आदि के वर्णन के पश्चात् नायक द्वारा प्रतिनायक पर विजय प्राप्त करके नायक की उत्कृष्टता को प्रतिपादित करने का विधान है ।

जैसे- किरातार्जुनीय महाकाव्य में सर्वप्रथम प्रतिनायक दुर्योधन के लोकानुराधन आदि गुणों के वर्णन के पश्चात् पाण्डवों द्वारा उसके विनाश को दर्शाया गया है।

(२) नायकोत्कर्ष के वर्णन में किसी भी क्रम की उत्कृष्टता या अनुत्कृष्टता नहीं समझनी चाहिए। दोनों क्रम प्रशस्य हैं। क्रमों को अपनाना महाकाव्यकार की इच्छा पर आधारित है। वह अपनी इच्छानुसार दोनों क्रमों में से किसी भी क्रम को अपनाने के लिए स्वतन्त्र है।

(३) द्वितीयक्रम के अनुसार नायकोत्कर्ष का वर्णन भामह को अभीष्ट नहीं है; क्योंकि महाकाव्य में प्रतिनायक की व्यापकता वाञ्छित नहीं होती अथवा अन्ततः उसका उत्कर्ष दिखाना अभीष्ट नहीं होता है तो आरम्भ में उसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है—

नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यन्युतादिभिः।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षभिधित्सया।
यदि काव्यशरीरस्य न स व्यपितयेष्यते।
न चाप्युदयभाक्तस्य मुधादौ ग्रहणं मुखे॥

— (काव्यालंकारसूत्र १.२२-२३)

(गद्यकाव्यस्वरूपं भेदौ च)

अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल॥२३॥
नायकेनैव वाच्याऽन्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणविष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशंसिनः॥२४॥

अन्वय— अपादः पदसन्तानः गद्यं (भवति)। तस्य किल आख्यायिका कथा इति द्वौ प्रभेदौ (भवतः)। आख्यायिका नायकेन एव अन्या नायकेन इतरेण वा वाच्या (भवति)। अत्र भूतार्थसंसिनः स्वगुणविष्क्रिया दोषः न।

शब्दार्थ— अपादः = (छन्दशास्त्र में प्रतिपादित गणों और मात्राओं द्वारा नियमित) पादों (चरणों) से रहित। पदसन्तानः = (सुबन्त और तिङन्त) पदसमुदाय (पदों का समूह)। गद्यं = गद्य (कहलाता है)। तस्य = उस (गद्य) के। किल = निश्चित रूप से। आख्यायिका = आख्यायिका। कथा = कथा। इति = ये। द्वौ = दो। प्रभेदौ = प्रभेद (भेद = प्रकार, रूप)। तयोः = उन (आख्यायिका और कथा) में। आख्यायिका = आख्यायिका। नायकेन = नायक के द्वारा ही। वाच्या = कथ्य होती है, कही गयी होती है। अन्या = दूसरी (कथा)। नायकेन = नायक के द्वारा। इतरेण वा = अथवा (नायक से) अन्य (व्यक्ति) द्वारा। अत्र = यहाँ, इन (आख्यायिका और कथा) में। भूतार्थशंसिनः = यथार्थ (वास्तविक अर्थ) का कथन करने वाले

(नायक) का। स्वगुणविष्क्रिया = अपने गुणों का वर्णन करना आत्मगुणप्रशंसा करना। दोषः नः = दोष नहीं है, दोष-रहित है।

अनुवाद— (छन्दशास्त्र में प्रतिपादित गणों और मात्राओं द्वारा नियमित) पादों (चरणों) से रहित (सुबन्त और तिङन्त) पदसमुदाय (पदों का समूह) गद्य होता है। इस (गद्य) के निश्चित रूप से आख्यायिका (और) कथा– ये दो प्रभेद (प्रकार) हैं। उन (आख्यायिका और कथा) में आख्यायिका नायक के द्वारा ही कथ्य (कही गयी) होती है (और) दूसरी (कथा) नायक के द्वारा अथवा (नायक से) अन्य (व्यक्ति) द्वारा (कही गयी होती है)। इन (आख्यायिका और कथा) में यथार्थ (वास्तविक अर्थ) का कथन करने वाले (नायक) का आत्मगुणप्रशंसा (अपने गुणों की प्रशंसा) करना दोष नहीं है (दोषरहित है)।

संस्कृतव्याख्या— महाकाव्यलक्षणं निरूप्यात्र गद्यस्य स्वरूपं तस्य प्रभेदौ तल्लक्षणं प्रतिपादयति कारिकाद्वयेन-**अपाद इति**। **अपादः** छन्दशास्त्रे प्रतिपादितगणमात्रानियमितः चरणरहितः **पदसन्तानः** सुबन्ततिङन्तानां पदानां सन्तानः समुदायः गद्यमित्यभिधीयते। **तस्य** गद्यस्य **किल** निश्चयेन **आख्यायिका कथा इति** आख्यायिका कथाभिधाना एतौ **द्वौ** द्विसङ्ख्याकौ **प्रभेदौ** प्रकारौ स्वरूपौ स्तः। **तयोः** आख्यायिकाकथयोः आख्यायिका नाम गद्यभेदः **नायकेन एव** आख्यायिकायाः नेतृणा एव निश्चयेन **वाच्या** कथनीया भवतीति योजनीयः। **अन्या** कथा नाम गद्यभेदः **नायकेन** कथायाः नेतृणा **इतरेण वा** नायकान्येन जनेन वा कथनीया भवति। **अत्र** आख्यायिकाकथयोः **भूतार्थशंसिनः** यथार्थवादिनः नायकस्य **स्वगुणविष्क्रिया** आत्मगुणप्रशंसा **दोषः न** दोषाय न भवतीति।

विशेष—

(१) इन दो कारिकाओं में दण्डी ने गद्य का लक्षण तथा प्राचीन आचार्यों के अनुसार उसके दो प्रभेदों का लक्षण प्रस्तुत किया है।

(२) पद्य तो छन्दशास्त्र में वर्णितं गणों और मात्राओं वाले चरणों (पादों) से नियमित रहता है; किन्तु गद्य में इन चरणों का अभाव होता है। जो पदसमूह (पादों) से नियमित रहता है वह पद्य कहलाता है; किन्तु गद्य में इन चरणों का अभाव होता है। जो पदसमूह इन छन्दशास्त्रीय नियमों से प्रतिबन्धित नहीं होते, वे गद्य कहे जाते है। इस प्रकार गद्य छन्दोरहित रचना है जिसके वाक्य में अक्षरों या मात्राओं की संख्या निश्चित नहीं होती। वैदिक भाषा में गद्य के लिए यजुष् संज्ञा प्रदान की गयी है और उसका लक्षण "अनियताक्षरात्मको यजुः" किया गया है अर्थात् गद्य (यजुष्) के वाक्यों में अक्षरों की संख्या नियत (निश्चित) नहीं होती।

(३) प्राचीन काव्यंशास्त्रियों के अनुसार दण्डी ने भी गद्यकाव्य को दो वर्गों में विभाजित किया है– आख्यायिका और कथा। आख्यायिका में अपने चरित का वर्णन करने वाला कथावस्तु का नायक स्वयं होता है; किन्तु कथा में नायक भी हो सकता है अथवा नायक से अन्य व्यक्ति भी। गद्य काव्य के अन्य भेदों का समाहार आख्यायिका और कथा में हो जाता है।

(४) आख्यायिका और कथा का लक्षण प्रस्तुत करके आचार्य ने प्राचीन आचार्यों के अनुसार आख्यायिका और कथा में अन्तर को भी दर्शाया है। उसके अनुसार दोनों के भेदक तत्त्व हैं– काव्य में कथानक को प्रस्तुत करने वाला। आख्यायिका में कथानक का प्रस्तोता स्वयं कथानक का नायक होता है; किन्तु कथा में नायक या उससे अन्य व्यक्ति भी हो सकता है। यह आख्यायिका और कथा में भेद करने वाला तत्त्व पर्याप्त नहीं है। इस विषय में भामह ने अधिक स्पष्ट रूप से दोनों का भेद प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार गद्य का प्रथम प्रभेद आख्यायिका संस्कृत भाषा में गद्यनिबद्ध रचना है जिसमें शब्द, अर्थ और समास सुबोध और कर्णप्रिय होना चाहिए। विषय उदात्त हो, उछ्वासों में इनका विभाजन होना चाहिए, नायक अपना वृत्तान्त स्वयं कहे, कहीं कहीं वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों द्वारा भावी घटनाओं की सूचना हो, कवि के विशिष्ट अभिप्राय-सूचक कथनों से सम्पृक्त हो और कन्याहरण, युद्ध, वियोग तथा नायक के अभ्युदय आदि का वर्णन हो। दूसरी ओर, कथा ऐसी गद्यमयी रचना होती है जो संस्कृत या संस्कृत से अन्य (प्राकृत इत्यादि) भाषा में उपनिबद्ध होती है जिसमें वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द नहीं होते, उछ्वासों में विभाजन नहीं होता तथा कथानक का प्रस्तोता नायक या नायक से भिन्न व्यक्ति होता है। आख्यायिका और कथा के अन्तर के विषय में साहित्यदर्पण ६.३३२-३३६ में जिन तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है, वे तत्त्व बाण के आख्यायिका ग्रन्थ हर्षचरित और कथाग्रन्थ कादम्बरी पर पूर्णतः लागू होते हैं।

(५) नायक के द्वारा अपने गुणों का वर्णन किया जाना उचित नहीं है क्योंकि आत्म-श्लाघा है। दण्डी के अनुसार यथार्थ (वास्तविक) गुणों का वर्णन करना आत्मश्लाघा के अन्तर्गत समाहित नहीं है। गुण के न होने पर भी उसका असत्यख्यापन आत्म श्लाघा है। अतः यथार्थ गुणों का वर्णन करने में कोई दोष नहीं है।

(भदेकतत्त्वखण्डनम्)

अपित्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीणात् ।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेदकारणम्[१] ।।२५।।

(१) भेदलक्षणं

अन्वय— अपि तु तत्रापि अन्यैः उदीरणात् अनियमः दृष्टः अन्यः वक्ता स्वयं वा इति भेदलक्षणं कीदृक् ।

शब्दार्थ— अपि तु = और भी । तत्रापि = उस (आख्यायिका) में भी । अन्यैः = (नायक से) भिन्न व्यक्तियों द्वारा । उदीरणात् = कहे जाने के कारण, कथन करने के कारण । अनियमः = नियम का अभाव, नियम का लागू न होना । दृष्टः = देखा गया है, दिखलायी पड़ता है, उपलब्ध होता है । अन्यः = दूसरा व्यक्ति । वक्ता = कथन करन वाला, कहने वाला (व्यक्ति) । स्वयं वा = अथवा स्वयं (नायक) । इति = यह भेदकारणं = भेद का कारण । कीदृक् = कैसा है अर्थात् उपयुक्त नहीं है ।

अनुवाद— और उस (आख्यायिका) में भी (कहानी = विषयवस्तु का) (नायक से) भिन्न व्यक्तियों द्वारा कथंन होने के कारण (इस सम्बन्ध में नियमभङ्ग) दिखलायी पड़ता है । (कहानी) कहने वाला (नायक से भिन्न) दूसरा व्यक्ति है अथवा स्वयं (नायक) है- यह (आख्यायिका और कथा में) भेद का कैसा कारण है अर्थात् भेद का यह कारण उपयुक्त नहीं है ।

संस्कृतव्याख्या— कथाख्यायिकयोः कथानकवक्तुः भेदेन पारम्परिकं भेदं निरूप्य तद्भेदकतत्त्वस्य निराकरणं करोत्यत्र- **अपित्विति** । **अपि तु** किञ्च प्राचीनाचार्याणामनुसारं नायकेनैव वाच्यायाम् आख्यायिकायामपि **अन्यैः** नायकेतरैः जनैः **उदीरणात्** वृत्तस्य कथनात् **अनियमः** नियमाभावः **दृष्टः** लक्षितः भवति । आख्यायिकायामपि नायकेतरेण जनेन वृत्तस्य कथनात् परम्परागतस्य कथाख्यायिकयोः भेदलक्षणस्य निषेधः प्राप्यते । गद्यकाव्येषु **अन्यः** नायकभिन्नःजनः **वक्ता** वृत्तप्रस्तोता **स्वयं नायको वा** अथवा स्वयं नायकः वृत्तप्रस्तोता इत्येवंप्रकारेण **भेदकारणं** कथाख्यायिकयोः भेदलक्षणस्य निरूपणं **कीदृक्** कीदृशम् ।

विशेष—

(१) प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित आख्यायिका और कथा के भेदक तत्त्वों का निरूपण दण्डी ने पूर्ववर्ती कारिका में किया कि आख्यायिका में स्ववृत्तान्त का कथन करने वाला नायक होता है और कथा में नायक या उससे भिन्न कोई व्यक्ति ।

(२) इस भेदक तत्त्वों के विषय में दण्डी ने आक्षेप किया है; क्योंकि दण्डी के समक्ष आख्यायिका के ऐसे भी उदाहरण थे, जिसमें कथानक का प्रस्तोता नायक से भिन्न व्यक्ति है । उदाहरण स्वरूप बाण के आख्यायिका ग्रन्थ हर्षचरित में नायक महाराज हर्षवर्धन है; किन्तु कथानक को प्रस्तुत करने वाले हर्षवर्धन नहीं, प्रत्युत नायक से भिन्न व्यक्ति कवि बाणभट्ट हैं ।

(३) प्राचीन आचार्यों द्वारा लक्षित आख्यायिका में नायक द्वारा ही कथानक का कथन अभीष्ट है किन्तु उनका यह प्रभेदक तत्त्व लक्षण हर्षचरित पर लागू नहीं होता। अतः प्राचीन आचार्यों का अभिमत यह भेदक तत्त्व समीचीन नहीं है।

(४) यहाँ यह शङ्का होती है कि यदि आख्यायिका में कथावाचक नायक और कथा में नायक या उससे भिन्न व्यक्ति लक्षित है तो जिस आख्यायिका में कथावाचक नायक से भिन्न व्यक्ति के होने पर उसे कथा की श्रेणी में रख लिया जा सकता है, क्योंकि कथा में कहानी को कहने वाला व्यक्ति नायक से भिन्न भी हो सकता है; किन्तु ऐसी बात नहीं है। वस्तुतः स्वरूप-भेद ही कथा और आख्यायिका के भेदक तत्त्व हैं, वृत्तान्तवक्तृता नहीं।

वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वं[1] च भेदकम्।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत्प्रसङ्गेन कथास्वपि ।।२६।।
आर्यादिवत्प्रवेशः[2] किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः।
भेदश्च दृष्टो लम्भादि[3]रुच्छ्वासो[4] वास्तु किं ततः ।।२७।।

अन्वय— आख्यायिकायाः वक्त्रं च अपरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वं च भेदकं चिह्नं चेत् प्रसङ्गेन कथासु अपि आर्यादिवत् वक्त्रापरवक्त्रयोः प्रवेशः किं न (भवेत्), लम्भादिः उच्छ्वासो वा अस्तु ततः किं च भेदः दृष्टः।

शब्दार्थ— आख्यायिकायाः = आख्यायिका के। वक्त्रं च = वक्त्र। अपरवक्त्रं च = और अपरवक्त्र। सोच्छ्वासत्वं च = तथा उच्छ्वासयुक्त होना। भेदकं = विभाजक, भिन्नता (भेद) करने वाले। चिह्नं = चिह्न, पहचान (के लक्षण)। चेत् = यदि, तो। प्रसङ्गेन = प्रसङ्गवशात्। कथासु अपि = कथाओं में भी। आर्यादिवत् = आर्या इत्यादि (छन्दों) के समान। वक्त्रापरवक्त्रयोः = वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का। प्रवेशः = प्रवेश, प्रयोग, समावेश। किं न = क्यों नहीं (हो सकता)। लम्भादि = लम्भक इत्यादि (शब्द)। उच्छ्वासो वा = अथवा उच्छ्वास। अस्तु = होवे। ततः = तो। किं च = क्या, कौन। भेदः = प्रभेद, अन्तर, भिन्नता। दृष्टः = दिखलायी देती है।

---

(१) साश्वासत्वं

(२) प्रयोगः

(३) लम्बादिर्

(४) आश्वासो, अदृष्टो

अनुवाद— (यदि) (कथा से) आख्यायिका के वक्त्र और अपरवक्त्र (छन्द) तथा उच्छ्वास युक्त होना (उच्छ्वासों में विभाजित होना) विभाजन चिह्न (पहचान के लक्षण) हैं तो प्रसङ्गवशात् कथाओं में भी आर्या इत्यादि (छन्दों) के समान वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग (प्रवेश) क्यों नहीं (हो सकता)। इसके (अतिरिक्त) (कथा में प्रयुक्त) लम्भक (इत्यादि) के लिए उच्छ्वास (का प्रयोग) हो तो (कथा और आख्यायिका में) कौन सी भिन्नता दिखलायी देती है अर्थात् ऐसा होने पर कथा और आख्यायिका में कोई भी भिन्नता नहीं दिखलायी देगी।

संस्कृतव्याख्या— यदि (कथातः) **आख्यायिकायाः वक्त्रं च अपरवक्त्रं च** वक्त्रं अपरवक्त्रं नाम छन्दः, **सोच्छ्वासत्वं च** उच्छ्वासेषु विभाजनं च **भेदकं** कथातः भिन्नत्वप्रदर्शकं **चिह्नं** परिचयात्मकं लक्षणं भवतीति शेषः, तत् **प्रसङ्गेन** प्रसङ्गवशात् **कथासु अपि** गद्यस्य कथाविधासु अपि काव्येषु **आर्यादिवत्** आर्यादिछन्दस्य इव **वक्त्रापरवक्त्रयोः** वक्त्रं च अपरवक्त्रं च तयोः छन्दसोः **प्रवेशः** प्रयोगः **किं न** भवति अर्थात् अवश्यमेव भवितुम् अर्हतीत्यर्थः। तथा च **लम्भादिः** कथानकव्यवच्छेदकादिः उच्छ्वासो वा उच्छ्वाससंज्ञया वा प्रयुक्तः **अस्तु** भवतु **ततः** तदनन्तरं **किंच भेदः कः** भेदकधर्मः **दृष्टः** लक्षितः भवति, तत् कथाख्यायिकयोः किमपि भेदकं तत्त्वं न भवितुमर्हतीति।

विशेष—

(१) कथानकवक्तृता के अतिरिक्त कतिपय अन्य भेदक तत्त्वों का भी विवेचन दण्डी से पूर्ववर्ती आचार्यों ने किया है। जैसे कि आख्यायिका में वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है तथा आख्यायिका नामक गद्यग्रन्थ का विभाजन उच्छ्वासों में होता है। दण्डी को ये भेदक तत्त्व स्वीकार नहीं हैं; क्योंकि जिस प्रकार कथा में आर्या इत्यादि छन्दों का प्रयोग होता है उसी प्रकार वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग हो सकता है तथा आख्यायिका यदि उच्छ्वासों में विभक्त होती है तो कथा भी लम्भक में विभक्त होती है। इस प्रकार उच्छ्वास और लम्भक दोनों पर्याय हैं। अतः इन तथ्यों को दोनों का भेदक तत्त्व मानना समुचित नहीं है।

(२) वक्त्र छन्द वह छन्द होता है जिसमें आठ अक्षर वाले चार चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षर से बाद में नगण और सगण नहीं होते; किन्तु चौथे अक्षर के बाद यगण अवश्य होता है– 'वक्त्रं नाद्यान्नसौ स्यातामब्धेर्योऽनुष्टुभिः ख्यातम्'।

(३) अपरवक्त्र वह छन्द होता है जिसमें चार चरण होते हैं तथा इसके विषम-संख्यक अर्थात् प्रथम और तृतीय चरण में दो नगण, एक रगण और लघु-गुरु होते हैं

तथा समसंख्यक अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ चरण में नगण, दो जगण और एक रगण होता है– 'अयुजि ननरला गुरुः समे तदपरवक्त्रमिदं नजौजरौ'।

(४) आर्या छन्द मात्रिक छन्द होता है जिसके प्रथम और तृतीय चरण में बारह, द्वितीय चरण में अठारह तथा चतुर्थ चरण में पन्द्रह मात्राएँ होती हैं–

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या॥

(गद्यकाव्यस्य भेदद्वयमेव)

तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः॥२८॥

अन्वय– तत् कथा आख्यायिका इति संज्ञाद्वयाङ्किता एका जातिः। शेषाः च आख्यानजातयः अत्र एव अन्तर्भविष्यन्ति।

शब्दार्थ– तत् = तो, इसी कारण, इसलिए। कथा = कथा। आख्यायिका = आख्ययिका। इति = ये। संज्ञाद्वयाङ्किता = दो नामों से अभिहित; दो नामों द्वारा कथित (प्रोक्त)। एका = एक, अभिन्न। जातिः = जाति वाली, रूप वाली। शेषाः च = और अवशिष्ट सभी। आख्यानजातयः = आख्यान के प्रभेद। अत्र एव = यहाँ, इन्हीं (कथा और आख्यायिका) में। अन्तर्भविष्यन्ति = समाहित (समाविष्ट, अन्तर्भावित, अन्तर्भूत) हो जाते हैं।

अनुवाद— इसी कारण से कथा और आख्यायिका– ये दोनों दो (पृथक्) नामों से अभिहित (कथित) एक ही (गद्य) जाति (रूप) वाली हैं। (इसके अतिरिक्त) अवशिष्ट (सभी) आख्यान के प्रभेद इन्हीं (कथा और आख्यायिका) में समाहित (अन्तर्भावित) हो जाते हैं।

संस्कृतव्याख्या— नामद्वितयाभिधीयमानयोः कथाख्यायिकयो परस्परं भेदं निराकृत्य तयोरेका गद्यजातिरेवेति प्रतिपादयत्यत्र-**तदिति**। **तत्** तस्मात्कारणात् **कथा आख्यायिका इति संज्ञाद्वयाङ्किता** संज्ञाद्वयेन पृथक्पृथग् नामद्वयेन अङ्किता अभिहिता अपि द्वयोः वस्तुतः **एका** अभिन्ना समा **जातिः** गद्यजातिः गद्यरूपः विद्यते। कथाख्यायिकयोः न कश्चिद् वास्तविको भेदः तथा च **शेषाः** कथाख्यायिकायाम् अवशिष्टाः **आख्यान-जातयः** गद्यप्रभेदाः **अत्र एव** अनयोः कथाख्यायिकयोः एव गद्यजातयोः अन्तर्भविष्यन्ति समाहिताः भविष्यन्ति।

विशेष—

(१) कथा और आख्यायिका में केवल नाम (संज्ञा) मात्र का भेद है, वास्तविक रूप से दोनों में कोई भेद नहीं है। केवल कथा और आख्यायिका में नहीं प्रत्युत अन्य गद्यरूपों में भी कोई भेद नहीं है।

(२) दण्डी का यह मत तर्कसङ्गत होते हुए भी परवर्ती आचार्यों ने उसे नहीं स्वीकार किया है। अग्निपुराण के अनुसार गद्यकाव्य के पाँच भेद होते हैं– आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा और कथानिका (द्रष्टव्य- अग्नि पुराण ३३७.१२) । हेमचन्द्र ने तो उसके भेदों का और भी विस्तार कर दिया है । उनके अनुसार आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा, आख्यान, निदर्शन, प्रवह्लिका, मणि-कुल्या, बृहत्कथा, सकलकथा और उपकथा— ये गद्यकाव्य के भेद हैं। (द्रष्टव्य- काव्यानुशासन, पृ०-४०६-८) । इनमें से अधिकांश का उल्लेख शृङ्गारप्रकाश में भी हुआ है ।

(आख्यायिकालक्षणप्रत्यालोचनम्)

कन्याहरणसङ्ग्रामविप्रलम्भोदयादयः ।
सर्गबन्धसमा एव नैते वैशेषिका गुणाः ।।२९।।

अन्वय— कन्याहरणसङ्ग्रामविप्रलम्भोदयादयः एते सर्गबन्धसमाः एव वैशेषिकाः गुणाः न ।

शब्दार्थ— कन्याहरणासङ्ग्रामविप्रलम्भोदयादयः = कन्या (अविवाहिता बाला) का हरण, युद्ध, विप्रलम्भ (शृङ्गार) और (नायक का) अभ्युदय (अथवा सूर्योदय तथा चन्द्रोदय) इत्यादि । एते = ये (वर्ण्यविषय) । सर्गबन्धसमाः एव = महाकाव्य के समान ही (होते हैं) । वैशेषिकाः = विशिष्ट। गुणाः = गुण । न = नहीं हैं ।

अनुवाद— कन्या (अविवाहिता बाला) का हरण (अपहरण), युद्ध, विप्रलम्भ (शृङ्गार) और (नायक का) अभ्युदय (अथवा सूर्योदय तथा चन्द्रोदय) इत्यादि ये (वर्ण्यविषय) तो महाकाव्य के समान ही (आख्यायिका आदि में) होते हैं (अर्थात् ये महाकाव्य में भी वर्णित होते हैं) । (वस्तुतः ये आख्यायिका के लिए) विशिष्ट गुण नहीं हैं।

संस्कृतव्याख्या— कन्याहरणदिवर्णनम् आख्यायिकायां भवतीत्येतेषां प्राचीनाचार्याणां मतं निराकरोत्यत्र–**कन्याहरणेति** । **कन्याहरणसङ्ग्रामविप्रलम्भोदयादयः** कन्याहरणं अविवाहितायाः कन्यायाः बलादपहरणं, रासक्षविवाहः इत्यर्थः, सङ्ग्रामः युद्धं विप्रलम्भः सम्भोगशृङ्गारपुष्टिकारकः चतुर्विधः विप्रलम्भशृङ्गारः, उदयः नायकस्य

अभ्युदयः सूर्यचन्द्रोदयः वा आदिशब्देनात्र पूर्वोक्ताः नगरार्णवप्रभृतयः वर्णविषयाः ज्ञातव्याः । **सर्गबन्धसमाः** महाकाव्यस्य विषयाणाम् इव सामान्या एव विद्यन्ते । इमे पूर्वोक्ताः गुणाः **वैशेषिकाः** आख्यायिकायाः कृते विशेषधर्माः न न विद्यन्ते । काव्यमात्रसाधारणाः एते गणास्तु गद्यकाव्यरूपायां कथायामपि भवितुमर्हन्ति । अत एव एतै गुणैः आख्यायिकायाः विशेषः प्रतिपादनं समुचितं न विद्यते ।

विशेष—

(१) प्राचीन कतिपय आचार्यों के अनुसार आख्यायिका के विशेष वर्ण्यविषय के रूप में कन्याहरण इत्यादि को माना गया है। दण्डी ने उनके इस मत का निराकरण करते हुए कहा है कि ये विषय तो महाकाव्य के सामान्य विषय हैं। महाकाव्य में भी इन विषयों का वर्णन हो सकता है। जब ये विषय पद्यप्रबन्ध महाकाव्य में आ सकते हैं तो गद्यप्रबन्ध कथा में भी आ सकते हैं । अतः इन्हें आख्यायिका का विशिष्ट गुण मानना समुचित नहीं है।

कविभावकृतं चिह्नमन्यत्रापि न दुष्यति ।
मुखमिष्टार्थसंसिद्ध्यै किं हि न स्यात्कृतात्मनाम् ।।३०।।

अन्वय— कविभावकृतं चिह्नम् अन्यत्र अपि न दुष्यति । इष्टार्थसंसिद्ध्यै कृतात्मनां किं हिं मुखं न स्यात् ।

शब्दार्थ— कविभावकृतं = कवि द्वारा (किसी विशेष) अभिप्राय (भाव) से (काव्य में) निबद्ध (नियोजित, प्रतिपादित)। चिह्नं = चिह्न, पहचान, लक्षण । अन्यत्र अपि = (आख्यायिका से) अन्य (काव्यभेदों) में भी । न दुष्यति = दोष नहीं उत्पन्न करता, दूषित नहीं करता, दोष (का कारण) नहीं बनता । इष्टार्थसंसिद्ध्यैः = अभीष्ट अर्थ (प्रयोजन) को सिद्धि (सम्पादन) के लिए । कृतात्मनां = बुद्धिमान् (कवियों) की (के लिए) । किम् = कौन (वस्तु) । हि = निश्चित रूप से । मुखं = उपाय, साधन। न स्यात् = नहीं होती अर्थात् हो जाती है ।

अनुवाद— कवि के द्वारा (किसी विशेष) अभिप्राय से (काव्य में) नियोजित चिह्न (पहचान) (आख्यायिका से) अन्य (काव्यभेदों) में भी दोष नहीं उत्पन्न करता । (अपने) अभीष्ट अर्थ (प्रयोजन) की सिद्धि (सम्पादन) के लिए बुद्धिमानों (कवियों) को कौन सी (वस्तु) निश्चित रूप से साधन नहीं होती (अर्थात् सभी वस्तुएँ साधन बन जाती हैं) ।

संस्कृतव्याख्या— आख्यायिकायाः लक्षणरूपेण प्राचीनशास्त्रकारप्रतिपादितस्य कवेरभिप्रायविशेषेण निबद्धस्य चिह्नस्य काव्यमात्रसामान्यधर्मत्वमिति प्रतिपादयत्यत्र-

कविभावेति। **कविभावकृतं** कवेरभिप्रायविशेषेण कृतं नियोजितं **चिह्नं** प्रबन्धचिह्नम् **अन्यत्र अपि** आख्यायिकाव्यतिरिक्तेषु अपि काव्यभेदेषु **न दुष्यति** दोषं नोत्पादयति। इष्टार्थसंसिद्ध्यै: स्वाभीष्टप्रयोजनस्य संसिद्ध्यै संसाधनाय **कृतात्मनां** बुद्धिमतां **किं** वस्तु **हि** निश्चितरूपेण **मुखं** साधनं **न स्यात्** न भवेत्। सर्वमेव वस्तुजातं मुखं साधनं भवेदित्यर्थः।

विशेष—

(१) प्राचीन आचार्यों के अनुसार कवि के विशेष अभिप्राय के द्योतक विशिष्ट चिह्नों की योजना आख्यायिका में होती है। दण्डी ने इस परम्परा को नहीं माना है। इनके उनुसार उन विशिष्ट चिह्नों का संयोजन आख्यायिका से भिन्न काव्यग्रन्थों में भी होता है, वे ग्रन्थ गद्यरूप वाले हों या पद्यरूप वाले।

(२) प्रायः सभी महाकाव्य के कवियों ने अपने महाकाव्य में एक विशिष्ट चिह्न का प्रयोग किया है। जैसे भारवि ने किरातार्जुनीय के प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'लक्ष्मी' शब्द का, माघ ने शिशुपालवध के प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'श्री' शब्द का, हर्ष ने अपने नैषधचरित के प्रत्येक सर्गान्त में 'आनन्द' शब्द का प्रयोग विशेष चिह्न के रूप में किया है; किन्तु सम्प्रति उपलब्ध आख्यायिका ग्रन्थों में इस प्रकार के चिह्न उपलब्ध नहीं होते। इसी आधार पर कतिपय विद्वानों ने इन चिह्नों के कविभावकृत चिह्न मानने में सन्देह किया है।

(मिश्रकाव्यनिरूपणम्)

मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तरः।
गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते॥३१॥

अन्वय— नाटकादीनि मिश्राणि (भवन्ति)। तेषां विस्तरः अन्यत्र (कृतः)। काचित् च गद्यपद्यमयी चम्पूः इति अभिधीयते।

शब्दार्थ— नाटकादीनि = नाटक इत्यादि। मिश्राणि = मिश्र काव्य (हैं)। तेषां = उन (नाटक इत्यादि) का। विस्तरः = निरूपण, प्रतिपादन परिचय, लक्षण। अन्यत्र = दूसरे (शास्त्र) में, दूसरे (ग्रन्थ = नाट्यशास्त्र) में। काचित् च = और कुछ विशिष्ट। गद्यपद्यमयी = गद्य और पद्य से युक्त (मिश्रित काव्य)। चम्पूः = चम्पू। इति = इस (नाम) से। अभिधीयते = अभिहित किया जाता है, कहा जाता है।

अनुवाद— नाटक इत्यादि मिश्र काव्य हैं। इन (नाटक इत्यादि) का प्रतिपादन अन्यत्र (दूसरे शास्त्र = नाट्यशास्त्र में) (किया गया है)। और कुछ (विशिष्ट) गद्य और पद्य से युक्त (मिश्रित काव्य) 'चम्पू' इस नाम से अभिहित किया जाता है।

संस्कृतव्याख्या— पद्यगद्यकाव्योः निरूपणं कृत्वात्र मिश्रकाव्यस्य चम्पूकाव्यस्य लक्षणं प्रतिपादयति– **नाटकादीनिति**। **नाटकादीनि** दशधा विभक्तानि नाटकादीनि दृश्यकाव्यानि **मिश्राणि** गद्यपद्योभयात्मिकत्वाद् मिश्रपदवाच्यानि सन्ति, गद्यपद्ययोः मिश्ररूपात्मिकत्वाद् मिश्राणि काव्यानि भवन्तीत्यर्थः, **तेषां** नाटकादीनां मिश्रकाव्यानां **विस्तरः** साङ्गं सरहस्यं च परिचयः अन्यत्र अन्ये ग्रन्थे भरतस्य नाट्यशास्त्रे प्रतिपादितः विद्यते इति शेषः। **काचित् च** काचिद् विशिष्टरूपा काव्यशरीरा **गद्यपद्यमयी** गद्येन पद्येन च मिश्रिता रचना **चम्पूः इति** चम्पूः इति नाम्ना **अभिधीयते**– वाच्या भवति। आख्यायिकादौ अपि गद्यपद्ययोः मिश्ररूपं प्राप्यते। परञ्च तत्र गद्यस्यैवाधिक्यं वर्तते पद्यस्य न्यूनत्वं च। अतः सा चम्पूनाम्ना नाभिधेया भवितुमर्हति।

विमर्श—

(१) पद्य और गद्य काव्यों का लक्षण निरूपित करने के पश्चात् दण्डी ने इस कारिका में मिश्रकाव्य का प्रतिपादन किया है।

(२) दृश्यकाव्य (रूपक) के दश भेद होते हैं— नाटक, प्रकरण, अङ्क, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम और ईहामृग। इनकी भी रचना गद्यपद्यात्मक होती है– इनमें गद्य और पद्य दोनों मिश्रित रूप से प्रयुक्त होते हैं। अतः ये भी मिश्रकाव्य है। इनका साङ्गोपाङ्गविवेचन भरत के नाट्यशास्त्र में किया गया है, अतः दण्डी ने इनका विवेचन नहीं किया है। नाटक इत्यादि पद से दण्डी ने नाटक के अतिरिक्त दृश्य काव्य के अन्य भेदों और उपभेदों प्रकरणादि की ओर सङ्केत किया है।

(३) इन नाटक इत्यादि के अतिरिक्त मिश्रितकाव्य की एक और विधा है, जिसकी रचना गद्य और पद्य– इन दोनों से मिश्रित होती है जिसे चम्पू कहा जाता है।

(४) आख्यायिका इत्यादि में भी गद्य और पद्य का मिश्रण प्राप्त होता है, फिर भी उसको चम्पूकाव्य के अन्तर्गत नहीं रखा जाता; क्योंकि आख्यायिका इत्यादि में पद्य की अपेक्षा गद्य विधा का आधिक्य होता है।

(भाषाभेदनिरूपणम्)

तदेतद्वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम् ।।३२।।

अन्वय— तत् एतत् वाङ्मयम् आर्याः भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा अपभ्रंशः मिश्रं च इति चतुर्विधम् आहुः।

शब्दार्थ— तत् = उस (पूर्वोक्त)। एतत् = इस। वाङ्मयम् = वाङ्मय को।

आर्याः = आचार्यों ने। भूयः = पुनः, फिर। संस्कृतं = संस्कृत। प्राकृतं = प्राकृत। अपभ्रंशः = अपभंश। मिश्रं च = और मिश्र। इति = इस प्रकार। चतुर्विधम् = चार प्रकार का। आहुः = कहा है।

अनुवाद— उस (पूर्वोक्त) इस वाङ्मय (वाणीरूपी काव्यशरीर) को आचार्यों ने पुनः संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र (भेद से) चार प्रकार का कहा है।

संस्कृतव्याख्या— काव्यस्य शरीरकृतं गद्यं पद्यं मिश्रं चेति भेदत्रयं निरूप्य भाषाभेदेन तेषां भेदत्रयाणां पुनः चातुर्विध्यं प्रतिपादयति- **तदेतदिति**। **तत्** पूर्वोक्तं **एतत् वाङ्मयं** भेदत्रयात्मकं वागात्मकं काव्यशरीरम् **आर्याः** आचार्याः **भूयः** पुनः **संस्कृतं प्राकृतं तथा अपभंशः**, **मिश्रं** चेति चतुर्विधं **आहुः** वर्णयन्ति। संस्कृतप्राकृतापभ्रंशमिश्र-भाषाभेदेन काव्यशरीरं चतुर्धा भवतीति आचार्या मन्यन्ते।

विशेष—

(१) दण्डी ने काव्यशरीर को गद्य, पद्य तथा मिश्र— इन तीन भेदों में बाँटा है। पुनः भाषा के आधार पर उस त्रिधा काव्यशरीर को आचार्यों के मत का अनुसरण करते हुए संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा मिश्र भेद से चार भागों में विभक्त किया है।

(संस्कृतप्राकृतयोः परिचयः)

संस्कृतं नाम दैवीवागन्वाख्याता महर्षिभिः[1]।
तद्भवस्तत्समो देशीत्यनेकशः प्राकृतक्रमः ॥३३॥

अन्वय— महर्षिभिः अन्वाख्याता दैवी वाक् संस्कृतं नाम। तद्भवः तत्समः देशी इति अनेकशः प्राकृतक्रमः (भवति)।

शब्दार्थ— (पाणिनि इत्यादि) महर्षियों द्वारा। अन्वाख्याता = अनुशासित। दैवी वाक् = देववाणी, देवभाषा। संस्कृतं नाम = संस्कृत कहलाती है, संस्कृत नाम से अभिहित की जाती है। तद्भवः = उस (संस्कृत) से उत्पन्न। तत्समः = उस (संस्कृत) के समान। देशी = स्थान-विशेष (शूरसेन, मगध इत्यादि) से सम्बन्धित। इति = इस प्रकार। अनेकशः = अनेक (शौरसेनी, मागधी इत्यादि) प्रकार वाला। प्राकृतक्रमः = प्राकृत-भाषा के प्रकार होते हैं।

अनुवाद— (पाणिनि इत्यादि) महर्षियों द्वारा (प्रकृति-प्रत्यय इत्यादि से) अनुशासित देववाणी (देवताओं से सम्बन्धित भाषा) संस्कृत कहलाती है। उस (संस्कृत)

---

(१) मनीषिभिः

से उत्पन्न, उस (संस्कृत) के समान (संस्कृत से भिन्न) तथा देश (स्थान-विशेष शूरसेन, मगध इत्यादि) से सम्बन्धित (होने के कारण) अनेक प्रकार प्राकृत का प्रकार (भेद) होता है।

संस्कृतव्याख्या— संस्कृतस्य प्राकृतस्य च सामान्यस्वरूपं विवेचयत्यत्र- **संस्कृतमिति**। **महर्षिभिः** पाणिन्यादिभिः **अन्वाख्याता** प्रकृतिप्रत्ययादिनानुशासिता **दैवी** देवैः प्रयोज्या **वाक्** वाणी देववाणी **संस्कृतं नाम** संस्कृतमित्यभिधीयते। **तद्भवः** तस्मात्संस्कृताद् उद्भवः उत्पतिः यस्या तादृशी, **तत्समा** तस्य संस्कृतस्य समाना संस्कृतभिन्ना **देशी** देशः शूरसेनादिस्थानविशेषः तेन सम्बन्धिता एवम् **अनेकशः** अनेकप्रकारः **प्राकृतक्रमः** प्राकृतभाषाभेदः भवतीति शेषः।

विशेष—

(१) संस्कृत भाषा पाणिनि इत्यादि वैयाकरण आचार्यों द्वारा प्रकृति-प्रत्यय इत्यादि से अनुशासित है। व्याकरण द्वारा संस्कारित (शुद्ध) होने कारण ही इसे संस्कृत कहा जाता है।

(२) प्राकृत वह भाषा है जिसका प्रयोग प्राकृत = साधारण लोग करते हैं अथवा प्रकृति अर्थात् संस्कृत से उत्पन्न होती है।

(३) तद्भव वे शब्द होते हैं जो संस्कृत से बने हों, किन्तु पूर्णरूपेण संस्कृत न हो। जैसे ह्रस्व का हत्त, कर्ण का कण्ण। तत्सम वे शब्द होते हैं जिनमें आकार परिवर्तन नहीं होता; किन्तु विभक्ति का प्रयोग नहीं होता। जैसे बालकः का बालक, गौः का गौ। देशी शब्द वे है जिनका प्रयोग केवल स्थान-विशेष में होता है।

(४) तद्भव, तत्सम स्थान-विशेष में प्रयुक्त होने के कारण तत्स्थानीय देशी शब्दों के विभिन्नता के भेद से प्राकृत भाषा अनेक प्रकार की होती है।

(महाराष्ट्रीयप्राकृतस्योत्कृष्टत्वम्)

महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम् ।।३४।।

अन्वय— महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः। यन्मयं सेतुबन्धादि सूक्तिरत्नानां सागरः (विद्यते)।

शब्दार्थ— महाराष्ट्राश्रयां = महाराष्ट्र में प्रयुक्त (प्राकृत) बोली को। प्रकृष्टं = उत्कृष्टतम, श्रेष्ठ। प्राकृतं = प्राकृत। भाषां = भाषा को, स्वीकार करते (मानते) है। विदुः = जानते हैं, यन्मयं = जिस (भाषा) से युक्त, जिस (भाषा) में रचित

(निबद्ध), प्रणीत । सेतुबन्धादिः = सेतुबन्ध इत्यादि । सूक्तिरत्नानां = सूक्ति रूपी रत्नों का । सागरः = सागर है ।

अनुवाद— महाराष्ट्र में प्रयुक्त (बोली जाने वाली) (महाराष्ट्री-प्राकृत) भाषा को (भाषाविद्) उत्कृष्टतम (श्रेष्ठ) प्राकृत स्वीकार करते हैं (मानते हैं)। जिस (प्राकृत भाषा) में रचित (प्रणीत) सेतुबन्ध इत्यादि (ग्रन्थ) सूक्तिरूपी रत्नों का साग॰ है ।

संस्कृतव्याख्या— स्थानभेदाद् विविधप्रकाराषु प्राकृतभाषासु महाराष्ट्र्याः प्राकृतस्य श्रेष्ठत्वं निरूपयत्यत्र- **महाराष्ट्रेति** । **महाराष्ट्राश्रयां** महाराष्ट्रप्रदेशविशेषे प्रयुक्ताः **भाषां** प्राकृतभाषां **प्रकृष्टं** श्रेष्ठं प्राकृतं **विदुः** स्वीकुर्वन्ति भाषाविज्ञाः इति शेषः । **यन्मयं** यस्यां भाषायां विरचितः **सेतुबन्धादि** प्रवरसेनेन प्रणीतः रावणवहः दहमुहवहो इति प्राकृतनामधेयं काव्यसमुदायं **सूक्तिरत्नानां** रत्नकल्पानां सुभाषितानां **सागरः** समुद्रः विद्यते इति शेषः ।

विशेष—

(१) स्थान-विशेषों में प्रयुक्त प्राकृत भाषाओं में कुछ न कुछ अन्तर होता है, अतः स्थान-भेद के कारण तत्तत् स्थानीय भाषाओं का विभाजन तत्तत् नामों से किया गया है। इस प्रकार प्राकृतभाषा अनेक प्रकार की है— शौरसेनी, गौड़ी, लाटी, मागधी, महाराष्ट्री इत्यादि।

(२) इन प्राकृत भाषाओं में महाराष्ट्री प्राकृत सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। प्राकृत के वैयाकरणों ने इस महाराष्ट्री प्राकृतभाषा को प्राकृतभाषा का प्रधान भेद स्वीकार किया है । इसीलिए प्राकृत काव्यकारों ने इसी प्राकृतभाषा को आश्रय बनाकर अपने काव्यों की रचना किया है तथा संस्कृत के नाटकों में भी स्त्रियों इत्यादि के संवाद को इसी प्राकृतभाषा में निबद्ध किया है ।

(३) सेतुबन्धकाव्य वाकाटक के शासक प्रवरसेन (द्वितीय) की रचना है। इसका प्राकृत नाम रावणवह अथवा दसमुहवह है। इस ग्रन्थ में कवि ने सूक्तियों का भण्डार जमा कर दिया है।

(४) सेतुबन्ध के अतिरिक्त हालसातवाहन कृत गाहासत्तसई, वाक्पतिराज-कृत गउडवहों महाराष्ट्री प्राकृत में ही रचित काव्य हैं।

(प्राकृतस्य अन्ये भेदाः)

शौरसेनी[१] च गौडी च लाटी[२]चान्या च तादृशी ।
याति प्राकृतमित्येवं[३] व्यवहारेषु सन्निधिम्[४]।।३५।।

(१) सौरसेनी (२) लाटी च गौडी च (३) इत्येन (४) सन्निधि

अन्वय— शौरसेनी च गौडी च लाटी च तादृशी अन्या च प्राकृतम् इत्येवं व्यवहारेषु सन्निधिं याति।

शब्दार्थ— शौरसेनी = शौरसेनी। गौडी च = और गौड़ी। लाटी च = तथा लाटी। तादृशी = उन्हीं के समान अन्य (इसके अतिरिक्त) अन्य। प्राकृतम् = प्राकृत। इति। एवं = इस नाम से। व्यवहारेषु = व्यवहारों में। सन्निधिं याति = प्रयुक्त होती है, व्यवहृत होती हैं।

अनुवाद— शौरसेनी, गौडी, लाटी तथा इन्हीं के समान (इनसे भिन्न) भाषाएं प्राकृत नाम से ही (काव्यादि) व्यवहारों में प्रयुक्त होती हैं।

संस्कृतव्याख्या— महाराष्ट्रप्राकृतभाषायाः वैशिष्ट्यं प्रतिपाद्य अस्यां कारिकायां प्राकृतभाषायाः भेदान् निर्दिशति- **शौरसेनीति**। **शौरसेनी** शूरसेनः कृष्णस्य मातामहः तन्नामाभिहितः मथुराकेन्द्रकः जनपदविशेषः तत्र प्रयुक्ता शौरसेनी नाम प्राकृतभाषा **गौडी च** गौडः बङ्गसमीपवर्ती देशविशेषः तत्र निवासिभिः प्रयुक्ता गौडी नाम प्राकृतभाषा च **लाटी च** कर्णाटकसन्निहितो लाट नाम देशविशेषः तत्र प्रयुक्ता लाटी अभिधाना प्राकृतभाषा च। **तादृशी** शौरसेन्यादिसदृशी **अन्या च** अपरा च प्राकृतभाषा स्थानभेदेन तत्र प्रयुक्ता तत्तन्नामधेया मागधी पैशाच्यादिः नामा प्राकृतभाषेत्यर्थः; प्राकृतम् इत्येवं नाम्ना **व्यवहारेषु** काव्यशास्त्रव्यवहारे लोकव्यवहारे च **सन्निधिं** सामीप्यं प्रयोगं वा **याति** गच्छति।

विशेष—

(१) शूरसेन नामक राजा श्रीकृष्ण के पितामह के रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्हीं के नाम पर उनके द्वारा शासित प्रदेश का शूरसेन कहा जाता है। इस प्रदेश की राजधानी मथुरा थी। वहाँ लोकव्यवहार में प्रयुक्त प्राकृतभाषा को शौरसेनी प्राकृत कहा जाता है। बङ्गाल के समीप स्थित गौड़ प्रदेश में व्यवहृत प्राकृतभाषा गौड़ी तथा कर्णाटक प्रदेश के आसपास लाटदेश में व्यवहृत भाषा लाटी कहलाती है।

(२) महाराष्ट्री, शौरसेनी, गौड़ी और लाटी के समान ही अन्य स्थान-विशेष में बोली जाने वाली मागधी, अवन्तिका, अर्धमागधी इत्यादि भी प्राकृत भाषाएँ हैं जिनका निर्देश दण्डी ने 'तादृशी चान्या' के द्वारा किया है।

(३) इन प्राकृत भाषाभेदों का उल्लेख नाट्यशास्त्रीय तथा काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है जो क्षेत्रविशेष में बोले जाने के कारण उन क्षेत्रविशेषों के नाम से उपलक्षित की गयी हैं।

(अपभ्रंशभाषानिरूपणम्)

आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृताः ।
शास्त्रेषु संस्कृतादन्यदपभ्रंशतयोदितम् ।।३६।।

अन्वय— काव्येषु आभीरादिगिरः अपभ्रंश इति स्मृताः। शास्त्रेषु संस्कृतात् अन्यत् अपभ्रंशतया उदितम्।

शब्दार्थ— काव्येषु = काव्य (ग्रन्थों) में। आभीरादिगिरः = गोपालकों (चरवाहों) इत्यादि की बोली (भाषा)। अपभ्रंश इति = अपभ्रंश इस (नाम से)। स्मृताः = अभिहित की जाती है, कही जाती है, कहलाती है। शास्त्रेषु = शास्त्र (ग्रन्थों में। संस्कृतात् = संस्कृत से। अन्यत् = अन्य (सभी भाषाएँ)। अपभ्रंशतया = अपभ्रंश (रूप) से। उदितम् = कही गयी हैं।

अनुवाद— काव्य (ग्रन्थों) में (प्रयुक्त) गोपालकों (चरवाहों) इत्यादि की भाषा अपभ्रंश कहलाती है। (किन्तु) शास्त्र (ग्रन्थों) में (प्रसङ्गवशात् प्रयुक्त) संस्कृत से अन्य सभी (भाषाएँ) अपभ्रंश के रूप में (अर्थात् अपभ्रंश) कही गयी है।

संस्कृतव्याख्या— अपभ्रंशपरिचयः निर्दिशत्यत्र- **आभीरादीति**। **काव्येषु** काव्यग्रन्थेषु प्रयुक्तः **आभीरादिगिरः** आभीराणां गोपालकानाम् आदीनां यवनशकादीनां जातिविशेषणां गिरः भाषाः **अपभ्रंशः इति** अपभ्रंश इत्यनेन नाम्ना **स्मृता** प्रोक्ता भवति परं च शास्त्रेषु नाट्यकाव्यविषयकशास्त्रग्रन्थेषु प्रसङ्गवशात् प्रयुक्ता **संस्कृताद्** संस्कृतभाषातः **अन्यत्** अपराः अन्याः सर्वाः भाषाः **अपभ्रंशतया** अपभ्रंशभाषारूपेण **उदितम्** अभिहितम्। केवलं काव्येषु एव गोपालकादीनां भाषा अपभ्रंशनामाभिधेया शास्त्रेषु तु संस्कृतव्यतिरिक्ताः सर्वाः अन्याः भाषाः अपभ्रंशनाम्नाः कथिताः भवन्ति। एवं शास्त्रदृष्ट्या भाषायाः रूपद्वयमेव संस्कृतम् अपभ्रंशश्च।

विशेष—

(१) इस कारिका में अपभ्रंश भाषा का निरूपण किया गया है। गोपालकों (चरवाहों) द्वारा लोकव्यवहार में प्रयुक्त भाषा अपभ्रंश कहलाती है।

(२) अपभ्रंश भाषा का प्रयोग दो क्षेत्रों में होता है- (क) काव्य ग्रन्थों में और (ख) शास्त्रीय ग्रन्थों में। दोनों के लिए दण्डी ने दो प्रकार का लक्षण प्रस्तुत किया है। केवल काव्यग्रन्थों में ही प्रयुक्त चरवाहों इत्यादि की भाषा अपभ्रंश कहलाती है। शास्त्रग्रन्थों में प्रसङ्गवशात् प्रयुक्त संस्कृतभिन्न सभी प्राकृत इत्यादि भाषाएँ अपभ्रंश कही जाती हैं।

(भाषाचतुष्टयस्य प्रयोज्यस्थलम्)

संस्कृतं सर्गबन्धादि प्राकृतं स्कन्धादि यत् ।
ओसरादिरपभ्रंशो नाटकादि तु मिश्रकम् ।।३६।।

अन्वय— यत् सर्गबन्धादि संस्कृतं स्कन्धकादि प्राकृतम् ओसरादि अपभ्रंशः नाटकादि तु मिश्रकं (भवति) ।

शब्दार्थ— यत् = जो । सर्गबन्धादि = महाकाव्य इत्यादि । संस्कृतं = संस्कृत (में निबद्ध) । स्कन्धादि = स्कन्धक इत्यादि । प्राकृतं = प्राकृत में (रचित) । ओसरादि = ओसर इत्यादि । अपभ्रंश = अपभ्रंश (में विरचित) । नाटकादि तु = और नाटक इत्यादि । मिश्रकम् = मिश्र (भाषा में निबद्ध) ।

अनुवाद— महाकाव्य इत्यादि संस्कृत, स्कन्धक इत्यादि प्राकृत, ओसर इत्यादि अपभ्रंश तथा नाटक इत्यादि मिश्र (भाषा में) निबद्ध (विरचित) होते हैं ।

संस्कृतव्याख्या— **सर्गबन्धादि** महाकाव्यादिकम्, आदिपदमत्र आख्यायिका कथाखण्डकाव्यादीनां कृते प्रयुक्तम् । **संस्कृतं** संस्कृतभाषायामुपनिब्द्धं भवतीति शेषः । **स्कन्धादि** स्कन्धकेन छन्देनोपनिबद्धं स्कन्धकम् आदिपदेनात्र गतितादीनां ग्रहणं तच्च **प्राकृतं** प्राकृतभाषायां विरचितं **ओसरादि** ओसर इत्यपि छन्द-विशेषः तेनोपनिबद्धं ओसरम् इत्यादिकं **अपभ्रंशः** अपभ्रंशभषायां विरचितं तथा च **नाटकादि** नाटकप्रकरणा-दिकं दशधा रूपकं **मिश्रः** संस्कृतप्राकृतादिमिश्रभाषायां रचितं भवतीति शेषः ।

विशेष—

(१) इस कारिका में दण्डी ने विविध काव्यों में विविध भाषाओं के प्रयोग को नियमित किया है । इसके अनुसार, आख्यायिका, महाकाव्य इत्यादि की रचना संस्कृत भाषा में होती है । स्कन्धक इत्यादि छन्द-विशेष वाले ग्रन्थ प्राकृत भाषा में तथा ओसर इत्यादि छन्द-विशेष वाले ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में होते हैं ।

(२) रूपक के दश भेदों नाटक प्रकारण इत्यादि में प्रयुक्त पात्र विविध प्रकार के होते हैं और उन पात्रों की स्थिति के अनुसार ही उनके लिए भाषा का प्रयोग होता है । अतः नाटक इत्यादि में केवल संस्कृत ही नहीं प्रत्युत पात्रों की स्थिति, देश और काल के अनुसार संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत के विविध प्रकारों का भी प्रयोग होता है । इसलिए नाटकों की भाषा मिश्रित होती है ।

(कथायाः भाषानिरूपणम्)

कथा हि सर्वभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते ।
भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम् ।।३८।।

अन्वय— कथा हि सर्वभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते। अद्भुतार्थां वृहत्कथां भूतभाषामयीं प्राहुः ।

शब्दार्थ— कथा = गद्यकाव्य-विशेष । हि = निश्चितरूप से । सर्वभाषाभिः = सभी भाषाओं से । संस्कृतेन = और संस्कृत से । बध्यते = निबद्ध (विरचित) होती है । अद्भुतार्थां = आश्चर्यजनक अर्थ (घटना) से युक्त । बृहत्कथां = बृहत्कथा को । भू षामयीं = पिशाच (पैशाची) भाषा वाली, पैशाची भाषा में निबद्ध । प्राहुः = कहते हैं, मानते हैं ।

अनुवाद— (गद्य का भेद-विशेष) कथा संस्कृत और (संस्कृत से अन्य) सभी भाषाओं में निबद्ध की गयी होती है । आश्चर्यजनक अर्थ (घटना) वाली बृहत्कथा (नामक कथा-ग्रन्थ) को (आचार्य) पैशाची भाषा वाली (पैशाची भाषा में निबद्ध) कहते (मानते) हैं ।

संस्कृतव्याख्या— कारिकायामस्यां कथाग्रन्थस्य भाषां निरूपयति- **कथा हीति** । **कथा** गद्यकाव्यविशेषः **हि** निश्चयेन **सर्वभाषाभिः** प्राकृतापभ्रंशादिभिः **संस्कृतेन च** संस्कृतभाषया च **बध्यते** विरच्यते । **अद्भुतार्थाम्** आश्चर्यजनकघटनायुक्तां **बृहत्कथां** तदाख्यां गुणाढ्यविरचितां कथां **भूतभाषामयीं** भूतस्य पिशाचस्य या भाषा पैशाची तया युक्तां पैशाचीभाषायां विरचितेत्यर्थः तादृशीं **प्राहुः** कथयन्ति कथाज्ञाः इति शेषः । संस्कृतस्य सर्वभाषाभिः इत्यनेन गतार्थस्यापि पृथग्ग्रहणं तत्प्राध्यान्यस्थापनार्थम् ।

विशेष—

(१) कथा संस्कृत में या तद्व्यतिरिक्त अन्य भाषाओं में लिखी जा सकती है। जैसे— कादम्बरी की रचना संस्कृत में तथा बृहत्कथा की पैशाची भाषा में हुई है। बृहत्कथा आज अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है; किन्तु इसके तीन संस्कृत रूपान्तर उपलब्ध होते हैं— बृहत्कथाश्लोकसंग्रह, बृहत्कथामञ्जरी तथा कथा-सरित्सागर।

(२) दण्डी ने अन्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत का प्राधान्य दर्शाया है। इसीलिए 'सर्वभाषाभिः' से संस्कृत का समावेश हो जाने पर भी संस्कृत का अलग से उल्लेख किया है।

(काव्यस्य भेदद्वयम्)

लास्यच्छलित[1]शल्यादि[2] प्रेक्षार्थम्[3] इतरत् पुनः।
श्रव्य[4]मेवेति सैषाऽपि[5] द्वयी गतिरुदाहृता ।।३९।।

अन्वय— लास्यच्छलितशल्यादि प्रेक्षार्थं पुनः इतरत् श्रव्यम् एव इति सा एषा अपि द्वयो गतिः उदाहृता।

शब्दार्थ— लास्यच्छलितशल्यादि = लास्य, छलित, शल्य इत्यादि। प्रेक्षार्थं = देखने के लिए अर्थात् दृश्य काव्य हैं। इतरत् पुनः = और इस (दृश्यकाव्य) से अन्य (भिन्न)। श्रव्यम् एव = श्रव्य (काव्य) ही है। इति = इस प्रकार। सा = वह (दृश्य और श्रव्य प्रकार वाला)। एषा अपि = यह भी। द्वयी गतिः = (काव्य के) दो प्रकार (दो भेद)। उदाहृता = आचार्यों द्वारा कहा गया (बताया गया) है।

अनुवाद— लास्य, छलित, शल्य इत्यादि दर्शनीय (दृश्य) काव्य हैं और इस (दृश्यकाव्य) से अन्य (काव्य) श्रव्य (काव्य) ही होते हैं। इस प्रकार (विनियोग-भेद से) वह (दृश्य और श्रव्य प्रकार वाला) काव्य भी दो प्रकार (भेद) वाला है। अर्थात् दृश्य और श्रव्य भेद से काव्य दो प्रकार का होता है।

संस्कृतव्याख्या— विनियोगंभेदेन काव्यस्य प्रभेदद्वये विभाजनं निर्दिशत्यत्र-**लास्येति**। **लास्यच्छलितशल्यादि** लास्यं शृङ्गारप्रधानं स्त्रीनृत्यं छलितं पुरुषस्य नर्त्तनं शल्या मस्तके हस्तं निधाय नृत्यम् इत्यादि पदेन ताण्डवादीनां ग्रहणं **प्रेक्षार्थं** दर्शनार्थं दृश्यकाव्याद् अन्यं पूर्वोक्तं महाकाव्यादिकं **श्रव्यम् एव** श्रवणमात्रविषयकं श्रव्यकाव्य-मेव भवति। इत्येवं काव्यस्य **सा** पूर्वोक्ता दृश्यश्रव्यरूपा **द्वयी गतिः** विनियोगकृता द्विविधा व्यवस्था **उदाहृता** कथिता आचार्यैरिति योजनीयम्।

विशेष—

(१) लास्य स्त्री द्वारा प्रस्तुत किया गया शृङ्गार-प्रधान नृत्य होता है। पुरुषों द्वारा प्रदर्शित नृत्य को छलित कहते हैं। मस्तक पर हाथ रख कर नाचना शल्या कह-लाता है।

(२) भोजदेव के अनुसार प्रेक्षार्थ (नृत्य) के छः भेद हैं— लास्य, छलित, शल्या, ताण्डव, हल्लीसक और रास। दण्डी ने आदि पद से ताण्डव, हल्लीसक और रास का ग्रहण किया है। ताण्डव वीर, रौद्र और अद्भुत रसप्रधान पुरुष द्वारा

---

(१) च्छलिक (२) शम्यादि, शम्यादि, साम्यादि
(३) प्रेक्ष्यार्थ (४) श्राव्यं
(५) सैवैषा

प्रदर्शित नृत्य है जो शिवजी को अभीष्ट है। हल्लीसक नृत्य में बहुत सी स्त्रियाँ एक पुरुष को नायक बनाकर तथा उसे चारों ओर से घेर कर नृत्य करती है। हल्लीसक नृत्य प्रभेद में जब तालबन्ध विशेष का प्रयोग होता है तो वह रास या रासक कहलाता है।

(३) दण्डी ने प्रयोजन के आधार पर काव्य के दो भेदों का निर्देश किया है— (क) दृश्य और (ख) श्रव्य। दृश्य काव्य वह काव्य है जो सुनने के साथ-साथ देखा भी जा सकता है; किन्तु श्रव्य काव्य केवल सुनने या पढ़ने योग्य होता है।

(वैदर्भगौडीयमार्गयोः विवेचनम्)

अस्त्यनेको गिरां मार्गः सूक्ष्मभेदं परस्परम्।
तत्र वैदर्भगौडीयौ वर्ण्येते प्रस्फुटान्तरौ ।।४०।।

अन्वय— गिराम् अनेकः मार्गः अस्ति (तेषां) परस्परं सूक्ष्मभेदं। तत्र प्रस्फुटान्तरौ वैदर्भगौडीयौ वर्ण्येते।

शब्दार्थ— गिराम् = वाणी के, काव्यों के। अनेकः = विविध। मार्गः = मार्ग, रचनापद्धति, रचनाप्रकार। अस्ति = है। परस्परं = आपस में, परस्पर। सूक्ष्मभेदं = सूक्ष्म अन्तर (भेद)। तत्र = उन (मार्गों में)। प्रस्फुटान्तरौ = स्पष्ट अन्तर वाले। वैदर्भगौडीयौ = वैदर्भ और गौडीय (मार्ग)। वर्ण्येते = वर्णित किये (विवेचित किये) जा रहे हैं।

अनुवाद— काव्य के विविध मार्ग (रचनापद्धति) हैं। (उन रचना पद्धतियों में) परस्पर सूक्ष्म भेद (होता है)। उनमें स्पष्ट अन्तर (भेद) वाले वैदर्भ और गौडीय (मार्ग) यहाँ वर्णित किये जा रहे हैं (अर्थात् वैदर्भ और गौडीय मार्ग का विवेचन किया जा रहा है)।

संस्कृतव्याख्या— मार्गभेदेन काव्यस्य द्विविधत्वं प्रतिपादयत्यत्र- **अस्तीति। गिरां** वाचां काव्यानामित्यर्थः, **अनेकः** विविधः **मार्गः** रचनापद्धतिः। **अस्ति** विद्यते। तेषां मार्गाणां **परस्परम्** अन्योन्यं **सूक्ष्मभेदः** स्वल्पान्तरं विद्यते इति शेषः। काव्यरचनापद्धत्तयः विविधाः सन्ति। सूक्ष्मभेदत्वात् तेषां सर्वासां निरूपयितुं न पार्यते **तत्र** तेषु मार्गेषु **प्रस्फुटान्तरौ** प्रस्फुटां स्पष्टम् द्रष्टुं शक्यम् अन्तरं भेदः ययोः तादृशौ **वैदर्भगौडीयौ** विदर्भप्रदेशः तत्रत्यानां जनानां प्रियः इति वैदर्भः मार्गः गौडप्रदेशवास्तव्यानां जनानां प्रियः गौडीयः तौ मार्गौ **वर्ण्येते** वर्णनस्य विषयौ क्रियते।

विशेष—

(१) दण्डी के अनुसार रचनापद्धति (मार्ग) के आधार पर काव्यशरीर के अनेक भेद

हैं। उन रचना पद्धतियों (मार्गों) में अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर होता है; अतः सभी का निरूपण करना सम्भव नहीं है। इस तथ्य का निर्देश १.१०१ में किया गया है।

(२) दण्डी ने रीति के अर्थ में मार्ग शब्द का प्रयोग किया है। इनके अनुसार तो मार्ग (रीतियाँ) अनन्त हैं और उनमें सूक्ष्म अन्तर है; किन्तु उनमें वैदर्भ और गौडीय दो रीतियों में अन्तर स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। दण्डी ने इन्हीं दो के विवेचन की प्रस्तावना किया है। कतिपय आचार्यों ने वैदर्भ मार्ग को कोमला रीति और गौडीय मार्ग को कठिना रीति नाम से अभिहित किया है।

(३) वामन आदि आचार्यों ने वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली— इन तीन रीतियों को स्वीकार किया है। पाञ्चाली रीति वैदर्भी और गौड़ी रीतियों का मिश्रित रूप है जिसे मिश्रा रीति भी कहा जाता है। इस प्रकार आचार्यों में इनकी संख्या के विषय में मत साम्य नहीं है। विश्वनाथ ने लाटीया को जोड़कर चार, भोज ने अवन्तिका और मागधी को जोड़कर छः रीतियों का प्रतिपादन किया है; किन्तु कवियों की काव्यरचना-पद्धति में प्रायः वामन के अनुसार वर्णित तीन ही रीतियों को विशेष मान्यता मिली है। दण्डी ने तो इनकी संख्या अगणित बताया है।

(दशगुणाः)

श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजकान्तिसमाधयः ॥४१॥
इति वैदर्भमार्गस्य प्राणाः दश गुणाः स्मृताः।
एषां विपर्ययः प्रायो दृश्यते गौडवर्त्मनि ॥४२॥

अन्वय— श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता अर्थव्यक्तिः उदारत्वम् ओजकान्तिसमाधयः इति दश गुणाः वैदर्भमार्गस्य प्राणाः स्मृताः। गौडवर्त्मनि एषां प्रायः विपर्ययः दृश्यते।

शब्दार्थ— श्लेषः = श्लेष। प्रसादः = प्रसाद। समता = समता। माधुर्यं = माधुर्य (मधुरता)। सुकुमारता = सुकुमारता। अर्थव्यक्तिः = अर्थव्यक्ति। उदारत्व = उदारता। ओजकान्तिसमाधयः = ओज, कान्ति और समाधि। इति = ये। दश = दश। गुणाः = गुण। वैदर्भमार्गस्य = वैदर्भमार्ग के, वैदर्भीरीति के। प्राणाः = प्राण। स्मृताः = कहे गये हैं। गौडवर्त्मनि = गौडीय मार्ग में, गौडीया रीति में। एषां = इन (गुणों) की। प्रायः = अधिकतर। विपर्ययः = विपरीतता। दृश्यते = दिखलायी पड़ती है, होती है।

अनुवाद— श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य (मधुरता), सुकुमारता, अर्थव्यक्ति,

उदारता, ओज, कान्ति और समाधि– ये दश गुण वैदर्भमार्ग (वैदर्भी रीति) के प्राण कहे गये हैं। गौडीय मार्ग (गौडीया रीति) में इन (गुणों) की प्रायः (अधिकतर) विपरीतता (अन्यथाभाव) दिखलायी पड़ती है।

संस्कृतव्याख्या— कारिकाद्वयेऽस्मिन् आचार्यः वैदर्भस्य गौडीयस्य च मार्गद्वयस्य गुणानां निरूपणं करोति– **श्लेष इति**। **श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता अर्थव्यक्तिः उदारत्वम् ओजः कान्तिः समाधिः च** इत्येते दशगुणाः दश काव्यशोभाकराः धर्मविशेषाः **वैदर्भमार्गस्य प्राणाः** जीवनमाधायकत्त्वभूताः **स्मृताः** कथिताः। एते गुणाः वैदर्भमार्गे दृश्यते इत्यर्थः। **गौडीयवर्त्मनि** गौडीयमार्गे **एषां** श्लेशादिदशगुणानां **प्रायः** अधिकतरेण **विपर्ययः** वैपरीत्यं **दृश्यते** अवलोक्यते। क्वचित्प्राप्यते क्वचिद् न दृश्यते इति प्रायः पदस्याभिप्रायः॥

विशेष—

(१) वैदर्भ मार्ग में महाप्राण स्पर्शवर्णों की स्वल्पता, अल्पप्राणवर्णों की अधिकता होती है। यह दश गुणों से समन्वित तथा समास-रहित या छोटे-छोटे समास वाले पदों से युक्त होता है। इस मार्ग को कतिपय आचार्यों ने कोमला रीति के नाम से भी अभिहित किया है।

(२) वह पदसंघटन श्लेष कहलाता है जिसमें अल्पप्राण वर्णों की प्रचुरता होती है तथा बन्ध की शिथिलता नहीं दिखायी पड़ती है। प्रसिद्ध अर्थ वाले पदों का प्रयोग प्रसाद गुण कहलाता है। विषम वर्णों से रहित पदों का गुम्फन समता कहलाता है। शब्द और अर्थ में जहाँ रस स्पष्ट होता है, वह माधुर्य कहलाता है। कोमल वर्णों के प्रयोग को सौकुमार्य कहा जाता है। सुने हुए वाक्य का दूसरे शब्दों की इच्छा के विना ही अर्थ का अवबोध हो जाना अर्थव्यक्ति कहा जाता है। कहे गये वाक्य में गुणोत्कर्ष प्रकट होना उदारता तथा समास की बहुलता होना ओज कहलाता है। लोकस्थिति का उलङ्घन किये विना ही हृदयग्राही अर्थ का प्रतिपादन करना कान्ति तथा दूसरे गुणों को अन्यत्र आरोपित करना समाधि कहा जाता है।

(३) गौड़ीयमार्ग में महाप्राण वर्णों की अधिकता वाले तथा लम्बे-लम्बे समासों वाले पद प्रयुक्त होते हैं। इस मार्ग में वैदर्भ मार्ग के लिए अनिवार्य गुणों में विपरीतता प्राप्त होती है अर्थात् इसमें अल्पप्राण वर्णों की अल्पता और महाप्राण वर्णों की प्रचुरता, अप्रसिद्ध अर्थ वाले पदों का प्रयोग, विषमवर्णों का प्रयोग, शब्दार्थ में अस्पष्ट रस, रूक्ष वर्णों का प्रयोग, दूसरे पदों के अध्याहार के विना अर्थ का अवबोधन न होना इत्यादि गुण होते हैं। इन्हीं कारणों से कतिपय आचार्यों ने इसे कठिना रीति के नाम से भी अभिहित किया है।

(४) जिन श्लेषादि दश गुणों का विवेचन दण्डी ने किया है, वे वैदर्भ मार्ग के लिए ही उपयुक्त है। गौडीय मार्ग में इन गुणों का ग्रहण करना दोष हो जाता है। अतः मार्गविशेष के लिए ही गुण तथा दोष का विवेचन किया जाता है। मार्गविशेष के लिए प्रतिपादित गुण दूसरे मार्ग के दोष और दोष गुण के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

(५) दण्डी ने वैदर्भ के जिन दश गुणों का प्रतिपादन किया है वे आज भी शास्त्रकारों द्वारा किसी न किसी रूप में स्वीकृत किये गये हैं।

(श्लेषगुणनिरूपणम्)

शिलष्टमस्पृष्टशैथिल्यमल्पप्राणाक्षरोत्तरम् ।
शिथिलं मालतीमाला लोलालिकलिला यथा ।।४३।।

अन्वय— अल्पप्राणाक्षरोत्तरम् अस्पृष्टशैथिल्यं शिलष्टं (भवति)। शिथिलं यथा– 'मालतीमाला लोलालिकालिला'।

शब्दार्थ— अल्पप्राणाक्षरोत्तरम् = अल्पप्राण अक्षर हैं अधिक जिसमें, ऐसा, अल्पप्राण अक्षरों की बहुलता वाला। अस्पृष्टशैथिल्यं = शिथिलता को स्पर्श न करने वाला, शिथिलता (के दोष) से रहित, अशिथिल बन्ध वाला। शिलष्टं = श्लेष (गुण) से युक्त। यथा = जैसे; उदाहरण। मालतीमाला = मालती (पुष्पविशेष) की माला (हार)। लोलालिकलिला = चञ्चल भौरों से युक्त है जो ऐसी, चञ्चल भ्रमरों से युक्त।

अनुवाद— अल्पप्राण अक्षरों की बहुलता वाला (अल्पप्राण अक्षर की अधिकता है जिसमें ऐसा) अतः शिथिलता (दोष) से रहित (बन्ध = रचना) श्लेष (गुण) से युक्त (कहलाती है)। शिथिल जैसे– 'मालतीमाला लोलालिकलिला' अर्थात् मालतीमाला चञ्चल भौरों से युक्त है।

संस्कृतव्याख्या— वैदर्भमार्गस्य तेषु दशसु गुणेषु श्लेषगुणस्य लक्षणं प्रतिपादयत्यत्र- **शिलष्टमिति**। **अल्पप्राणाक्षरोत्तरम्** स्पर्शवर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमाश्च- स्पर्शाः यरलवाश्च अल्पप्राणाः ते वर्णाः उत्तराः प्रधानाः प्रचुराः वा यस्मिन् तादृशम् अतश्च **अस्पृष्टशैथिल्यम्** अस्पृष्टम् अस्पष्टं शैथिल्यं शिथिलता येन तादृशं **शिलष्टं** श्लेष- गुणान्वितं भवतीतिशेषः। शिथिलस्योदाहरणं यथा– **मालतीमाला** मालतीपुष्पविशेष- माला **लोलालिकलिला** लोलैः चञ्चलैः अलिभिः मधुकरैः कलिला युक्ता भवतीति- शेषः। वाक्यमिदमल्पप्राणाक्षरैः बन्धिता अत एवात्र शैथिल्यम्।

विशेष—

(१) स्पर्श वर्गों के प्रथम, तृतीय तथा पञ्चम स्पर्श तथा य र ल व ये अन्तस्थ

अल्पप्राण कहलाते हैं। श्लेष गुण में इन अल्प प्राण वर्णों की अधिकता होती है।

(२) 'उत्तरम्' पद के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि पदावली में महाप्राण वर्ण भी होते हैं; किन्तु उनकी संख्या अल्पप्राण वर्णों से कम होती है।

(३) अल्पप्राण वर्णों की अधिकता और बीच में महाप्राणवर्णों का समाहार होने से रचना अशिथिल (दृढ) बन्ध वाली होती है। जैसे- 'मालतीदाम लङ्घितं भ्रमरैः' इस पदावली में अल्पप्राण अक्षरों की अधिकता है जिनके बीच-बीच में महाप्राण अक्षरों का भी समाहार हुआ है।

(४) केवल अल्पप्राण वर्णों वाली रचना शिथिल बन्ध वाली होती है। जैसे- 'मालतीमाला लोलालिकलिला' इस पदावली में सभी अक्षर अल्पप्राण हैं; अतः यह बन्ध शिथिल है।

(५) श्लेष गुण के लक्षण में प्रतिपादित अशिथिल पद को लेकर आचार्यों में मतभेद है। जीवानन्द विद्यासागर के अनुसार अल्पप्राण बहुल रचना शिथिल होती है; किन्तु विन्यासकौशल से शिथिल न प्रतीत होने के कारण श्लेष गुण वाली होती है। जैसे— 'मालतीमाला लोलालिकलिला', किन्तु यह व्याख्या उपयुक्त नहीं प्रतीत होती।

(शैथिल्यस्य गौडीयैः स्वीकारत्वम्)

अनुप्रासधिया गौडैस्तदिष्टं बन्धगौरवात्।
वैदर्भैर्मालतीदाम लङ्घितं भ्रमरैरपि।।४४।।

अन्वय— तत् गौडैः अनुप्रासधिया बन्धगौरवात् इष्टं (भवति)। वैदर्भैः मालतीदाम भ्रमरैरपि लङ्घितम् इति।

शब्दार्थ— तत् = उस प्रकार की (शिथिल पदावली)। गौडैः = गौड (मार्ग के समर्थकों के द्वारा। अनुप्रासधिया = अनुप्रास की बुद्धि (अनुराग, आग्रह) से। बन्ध-गौरवात् = बन्धगौरव (रचनापद्धति) के कारण। इष्टं = अभीष्ट, (स्वीकार्य = मान्य) (होती है)। वैदर्भ = वैदर्भमार्ग के अनुयायियों के द्वारा। मालतीदाम = मालती की माला। भ्रमरैः = भ्रमरों से। लङ्घितं = व्याप्त (युक्त) है।

अनुवाद— उस उक्त (प्रकार वाली शिथिल पदावली) को गौडमार्ग के समर्थकों के द्वारा अनुप्रास की बुद्धि (अनुराग = अनुग्रह) से बन्धगौरव (रचना-पद्धति की गुरुता) के कारण स्वीकार की जाती (मानी जाती) है। वैदर्भमार्ग वाले अनुयायियों द्वारा 'मालतीदाम लङ्घितं भ्रमरैः' अर्थात् मालती (पुष्पविशेष) की माला भ्रमरों से व्याप्त (इस प्रकार का कथन स्वीकार किया जाता है) है।

संस्कृतव्याख्या— वैदर्भगौडीमार्गद्वयोः मतानुसारं शैथिल्याशैथिलस्य स्वरूपं प्रतिपादयत्यत्र- **अनुप्रासेति** । **तत्** पूर्वकारिकायां प्रतिपादितं शिथिलत्वं **गौडैः** गौडीमार्ग-समर्थकैः **अनुप्रासधिया** अनुप्रासस्य अनुप्रासनाम अलङ्कारः तस्य धिया बुद्ध्या बन्ध-शैथिल्ये विद्यमाने सत्यपि अनुप्रासानुरागेण **बन्धगौरवात्** काव्यप्रबन्धस्य गौरवात् गाढत्वात् **इष्टम्** अभीष्टं स्वीकृतं वा भवति । 'मालतीमाला लोलालिकलिला' इत्यत्र शिथिले बन्धे सत्यपि अनुप्रासाग्रहेण काव्यप्रबन्धगाढत्वात् गौडीयानुयायिभिः स्वीक्रीयते । परम् अपरैः **वैदर्भैः** वैदर्भमार्गानुयायिभिः पूर्वोदाहृत पदावल्याः स्थाने **मालतीदाम लङ्घितं भ्रमरैः** अर्थात् मालतीमाला भ्रमरैः परिव्याप्ता इत्येवंरूपेण अल्पाक्षरातिशयात् महाप्राणाक्षरद्वययुतात् च शैथिल्यबन्धरहितः मन्यते । यद्यपि शिथिलत्वं मार्गद्वयेनापि स्वीकृतम् तथापि तयोः शैथिल्यलक्षणविषये नास्ति मतसाम्यम् ।

विशेष—

(१) पूर्ववर्ती कारिका में वैदर्भ मार्ग के अनुसार शिथिलत्व का उदाहरण दिया है— 'मालतीमाला लोलालिकालिला' । वैदर्भ मार्ग के अनुसार पदावली में अल्पप्राण अक्षरों का महाप्राण अक्षरों से आधिक्य होना चाहिए, अभाव नहीं । उक्त पदावली में महाप्राण वर्णों का पूर्णतः अभाव है । इस कारण यह पदावली बन्धशैथिल्य से ग्रसित है । इनके मत में 'मालतीदाम लाङ्घितं भ्रमरैः' यह उसी अर्थ की बोधक पदावली बन्धशैथिल्य दोष से रहित है ।

(२) गौडीय मार्ग के समर्थकों के अनुसार 'मालतीमाला लोलालिकलिला' यह पदावली बन्धशैथिल्य से दोष-मुक्त है; क्योंकि इस पदावली में अनुप्रास अलङ्कार सम्यक् प्रकार से संयोजित है जो बन्धदृढ़ता वाला है। इस प्रकार यह पदावली गाडीय मार्ग के अनुयायियों को स्वीकृत है ।

(प्रसादगुणनिरूपणम्)

प्रसादवत्प्रसिद्धार्थमिन्दोरिन्दीवरद्युति ।
लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतिसुभगं वचः ।।४५।।

अन्वय— प्रसिद्धार्थं प्रसादवत् (भवति यथा-) इन्दोः इन्दीवरद्युति लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति इति वचः प्रतीतिसुभगम् (अस्ति) ।

शब्दार्थ— प्रसिद्धार्थं = प्रसिद्ध अर्थ वाली। प्रसादवत् = प्रसाद (गुण) से युक्त (होती है) । इन्दोः = चन्द्रमा का । इन्दीवरद्युति = नीलकमल के समान कान्ति (तेज) युक्त । लक्ष्म = चिह्न (कलङ्क) । लक्ष्मीं = शोभा को । तनोति = बढ़ाता है । इति = यह । वचः = कथन, वाक्य । प्रतीतिसुभगं = शीघ्र अर्थावबोध कराने वाला है ।

अनुवाद— प्रसिद्ध अर्थ वाला (कथन) प्रसादगुणोपेत (प्रसाद गुण से युक्त) (होता है), (जैसे) इन्दोरिन्दीवरद्युति लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति अर्थात् 'चन्द्रमा का नीलकमल की कान्ति वाला चिह्न (कलङ्क) (उसकी) शोभा को बढ़ाता है' यह कथन (वाक्य) शीघ्र अर्थावबोध कराने वाला है।

संस्कृतव्याख्या— प्रसादगुणस्य लक्षणं प्रतिपादयत्यत्र– **प्रसादवदिति**। **प्रसिद्धार्थं** प्रसिद्धः लोकविश्रुतः अर्थः यस्य तादृशं कथनं **प्रसादवत्** प्रसादगुणयुक्तं भवति। यथा– **इन्दोः** चन्द्रमसः **इन्दीवरद्युति** नीलकमलकान्तियुक्तं **लक्ष्म** चिह्नम् कलङ्कमित्यर्थः तस्य चन्द्रस्य **लक्ष्मीं** शोभां **तनोति** विस्तारयति। **इति** एवं प्रकारं **वचः** वचनं **प्रतीति-सुभगं** शीघ्रार्थावबोधकं अत एव रमणीयं भवति।

विशेष—

(१) इस कारिका में दण्डी ने प्रसाद गुण का निरूपण किया है। प्रसाद गुण वाला कथन वह कथन होता है जिसमें प्रयुक्त पदों का अर्थ प्रसिद्ध (लोक विश्रुत) होता है। कथन को सुनते ही अर्थ प्रकट हो जाता है।

(२) 'इन्दोरिन्दीवरद्युति लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति' इस वाक्य में प्रयुक्त सभी पद शीघ्र अर्थ प्रतीति कराने में समर्थ हैं, अतः यहाँ प्रसाद गुण है।

(अप्रसिद्धार्थस्यापि गौडीयैः समर्थनम्)

व्युत्पन्नमिति　गौडीयैर्नातिरुढमपीष्यते[1]।
यथानत्यर्जुना[2]ब्जन्मसदृशाङ्को　वलक्षगुः[3]॥४६॥

अन्वय— गौडीयैः नातिरूढम् अपि व्युत्पन्नम् इति इष्यते। यथा– 'अनत्यर्जुनाब्जन्म-सदृशाङ्कः वलक्षगुः'।

शब्दार्थ— गौडीयैः = गौडीय मार्ग के अनुयायियों द्वारा। **नातिरूढम् अपि**– अत्यधिक अप्रसिद्ध भी (निहतार्थता दोष से युक्त भी)। व्युत्पन्नं = व्युत्पत्तियुक्त, व्युत्पत्ति की दृष्टि से सङ्गत। इष्यते = स्वीकार किया जाता है, अङ्गीकृत किया जाता है। यथा = जैसे। अनत्यर्जुनाब्जन्मसदृशाङ्कः = अनतिश्वेत (नीले) जलज (अब्जन्म, कमल) के समान चिह्न (अङ्क = कलङ्क) वाला। वलक्षगुः = चन्द्रमा (सुशोभित हो रहा है)।

अनुवाद— गौड़ीय मार्ग के अनुयायियों द्वारा अत्यधिक अप्रसिद्ध भी (अर्थ

---

(१) इतीष्यते
(२) यथानभ्यर्जुना
(३) वलर्क्षयुः

वाला अर्थात् निहितार्थ दोष से युक्त भी) व्युत्पत्तियुक्त (व्युत्पत्ति की दृष्टि से सङ्गत) (मानकर प्रसादगुण से युक्त) स्वीकार किया जाता है। जैसे– अनत्यर्जुनाब्जन्मसदृशाङ्को वलक्षगुः अर्थात् अनतिश्वेत (नीले) जलज (कमल) के समान चिह्न (कलङ्क) वाला चन्द्रमा (सुशोभित हो रहा है)।

संस्कृतव्याख्या— प्रसादविषयकमतमधिकृत्य गौडीयमतानुसारं प्रसादगुणं लक्षयति– **व्युत्पन्नमिति**। **गौडीयैः** गौडीयमार्गसमर्थकैः **नातिरूढं** नातिप्रसिद्धम् निहितार्थदोषयुक्तमित्यर्थः अपि **व्युत्पन्नम् इति** व्युत्पत्तियुक्तम् इति, अवयवार्थयुक्तमित्यर्थः, अस्मादेव कारणात् **इष्यते** प्रसादगुणयुक्तेन काव्यत्वेन स्वीक्रीयते। **यथा** उदाहरति- **अनत्यर्जुनाब्जन्मसदृशाङ्कः** अनत्यर्जुनम् अनतिधवलं यत् अब्जन्म जलजं तेन सदृशं अङ्कः कलङ्कः तादृशः **वलक्षगुः** वलक्षाः धवला गावः किरणाः यस्य स चन्द्रमा सुशोभयतीति योजनीयम्। अर्जुनपदः कार्तवीर्यस्य युधिष्ठिरस्य भ्रातुः मध्यमपाण्डवस्य कृते प्रसिद्धः। अत्र धवले निहितार्थः अनत्यर्जुनपदः नीलार्थेऽप्रसिद्धः। अब्जन्मपदः योगार्थघटितोऽपि कमलार्थेऽप्रसिद्धः। एवमेव वलक्षगुपदः चन्द्रार्थेऽप्रसिद्धः। एवमप्रसिद्धार्थाः अप्येते पदाः योगार्थघटिता अत एव गौडीयानुयायिभिः काव्यत्वेन मन्यते।

विशेष—

(१) वैदर्भमार्ग के अनुयायी प्रसिद्ध अर्थ वाले पदों के संयोजन को प्रसाद गुण मानते हैं; किन्तु गौडीय मार्ग के समर्थक प्रसिद्धार्थ वाले पदों के संयोजन के साथ-साथ उन अप्रसिद्ध अर्थ वाले पदों के भी योजन को काव्य स्वीकार करते हैं जिनका निहतार्थ बोध के द्वारा भी अर्थ लगाया जा सकता है। अर्थात् अस्पष्टार्थता (निहतार्थता) दोष होने पर भी गौडीय मार्ग के अनुसार काव्यत्व की हानि नहीं होती।

(२) अर्जुन शब्द का प्रयोग कार्तवीर्य अथवा युधिष्ठिर के मध्यम भाई के लिए प्रसिद्ध है; किन्तु अनत्यर्जुन पद नीले अर्थ में प्रसिद्ध नहीं है। इसी प्रकार अब्जन्म पद योगार्थ घटित होने पर भी कमल के अर्थ में अप्रसिद्ध है तथा वलक्षगु शब्द भी चन्द्रमा के अर्थ में अप्रसिद्ध है। गौड़ीयमार्ग के अनुसार इन अप्रसिद्ध अर्थ वाले पदों से संयोजित काव्य में काव्यता होती ही है।

(समतागुणनिरूपणं त्रैविध्यम्)

समं बन्धेष्वविषमं ते मृदुस्फुटमध्यमाः।
बन्धा[1] मृदुस्फुटोन्मिश्रवर्णविन्यासयोनयः ॥४७॥

---

(१) बन्धे

अन्वय— बन्धेषु अविषमं समं ते मृदुस्फुटमध्यमाः बन्धा मृदुस्फुटोन्मिश्रवर्ण-विन्यासयोनयः (सन्ति)।

शब्दार्थ— बन्धेषु = काव्यप्रबन्धों में, रचनाप्रबन्धों में। अविषमं = विसमता-रहित। समं = सम, समता नाम वाले गुण से युक्त (होते हैं)। ते = वे (रचना प्रबन्ध)। मृदुस्फुटमध्यमाः = मृदु, स्फुट और मध्यम भेद से तीन प्रकार के होते हैं। बन्धाः = (रचना प्रबन्ध)। मृदुस्फुटोन्मिश्रवर्णविन्यासयोनयः = कोमल, कठोर और मिश्र वर्णों के प्रयोग से उत्पन्न, कोमल कठोर और मिश्र वर्णों का प्रयोग है जन्मस्थान (योनि) जिनका ऐसे।

अनुवाद— काव्यप्रबन्ध (रचनाप्रबन्ध) में विसमता से रहित (समता बन्ध के प्रयोग वाले) (बन्ध) सम (समता गुणोपेत) (कहलाते हैं) वे (रचनाप्रबन्ध) कोमल, कठोर और मध्यम (भेद से) तीन प्रकार के होते हैं। वे रचनाप्रबन्ध कोमल, कठोर और मिश्र वर्णों के प्रयोग से उत्पन्न हैं।

संस्कृतव्याख्या— समतागुणलक्षणं प्रतिपादयत्यत्र- **सममिति**। **बन्धेषु** काव्य-प्रबन्धेषु **विषमं** बन्धवैषम्यरहितं वाक्यं **समं** समतानामकगुणोपेतमिति **ते** च बन्धाः **मृदुस्फुटमध्यमाः** मृदुः कोमलः स्फुटः विकटः मध्यमश्च मृदुकोमलयोः मिश्रः एवं त्रिविधं भवति। ते **बन्धाः** रचनाप्रबन्धाः **मृदुस्फुटोन्मिश्रयोनयः** मृदुः कोमलः स्फुटो विकटः तयोः मिश्रश्च योनिः जन्मस्थानं येषां तादृशः मृदुस्फोटोन्मिश्रेभ्यः जायमानाः वा भवन्तीति शेषः। मृदुवर्णविन्यासप्रभवो मृदुबन्धः स्फुटवर्णविन्यासजायमानः स्फुट-बन्धः, तयोः मृदुस्फुटयोः मिश्ररूपेण जायमानः मिश्रबन्धः मध्यमबन्धः वा भवति।

विशेष—

(१) ऋ और ऌ से व्यतिरिक्त सभी स्वरवर्ण, स्पर्शवर्गों के प्रथम और पञ्चमवर्ण तथा अन्तःस्थ ये वर्ण कोमल (मृदु) वर्ण कहलाते हैं। इन कोमलवर्णों से अन्य अर्थात् ऋ और ऌ- ये दो स्वर वर्ण, स्पर्श वर्गों के द्वितीय तृतीय और चतुर्थ स्पर्श तथा ऊष्म (श ष स ह) ये कठोर (स्फुट या विकट) वर्ण कहलाते हैं।

(२) जिस रचनाबन्ध में जिस प्रकार के वर्णों का संयोजन होता है, वह रचना उसी श्रेणी-विशेष में आती है। कोमल वर्णों के संयोजन वाली रचना मृदु, कठोर वर्णों वाली स्फुट तथा दोनों प्रकार के वर्णों से संयोजित रचना मिश्र होती है। अतः ये कोमल, कठोर और मिश्र वर्ण ही इन मृदु, स्फुट और मिश्र बन्ध के जन्म स्थान हैं।

(३) इनमें से कोई बन्ध उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट नहीं है- दोनों की उपयोगिता समान होती है। ये तीनों बन्ध यथावसर प्रयुक्त होने पर सौन्दर्याभिधायक होते हैं।

(४) दण्डी के अनुसार एक ही पद्य में भिन्न-भिन्न बन्धों का प्रयोग भी उचित है। ऐसा होने पर बन्धवैषम्य दोष नहीं होता है।

(मृदुस्फुटबन्धयोः निदर्शनम्)

कोकिलालापवाचालो मामेति मलयानिलः।
उच्छलच्छीकराच्छाच्छनिर्झराम्भःकणोक्षितः ।।४८।।

अन्वय— कोकिलापवाचालः (अथ च) उच्छलच्छीकराच्छाच्छनिर्झराम्भः-कणोक्षितः मलयानिलः माम् एति।

शब्दार्थ— कोकिलालापवाचालः = कोयलों की कूजन (आलाप) से मुखरित। उच्छलच्छीकराच्छाच्छनिर्क्षराम्भः कणोक्षितः = ऊपर उछलते हुए जलकणों (शीकर) से अत्यन्त निर्मल (अच्छाच्छ) झरने की जल बूँदों से संसिक्त (आर्द्र, उक्षित)। मलयानिलः = मलयपवन। मान् = मेरी ओर। एति = आ रहा है।

अनुवाद— कोयलों की कूजन से मुखरित तथा उछलते हुए जलकणों से अत्यन्त निर्मल झरने कीं जलबूदों से संसिक्त (आर्द्र) मलयपवन मेरी ओर आ रहा है।

संस्कृतव्याख्या— मृदुस्फुटबन्धयोः निदर्शनं प्रदर्शयत्यत्र- **कोकिलेति**। तत्र कोकिलालापेत्यादि पादद्वयं मृदुबन्धोः निदर्शनं उच्छलेत्यादिपादद्वयं स्फुटस्योदाहरणम्। **कोकिलालापवाचालः** कोकिलानां परभृतानां आलापः कूजनं तेन **वाचालः** मुखरितः **उच्छलच्छीकराच्छाच्छनिर्झराम्भः कणोक्षितः** उच्छलन्तः उद्गच्छन्तः ये शीकराः जलकणाः तैः अच्छाच्छम् अतिनिर्मलं निर्झराम्भः निर्झरजलं तस्य कणैः बिन्दुभिः उक्षितः सिक्तः आर्द्रः इत्यर्थः **मलयानिलः** मलयपवनः माम् एति मामुपगच्छति।

विशेष—

(१) इस कारिका के चार चरणों में प्रथम दो चरणों अर्थात् प्रथम और द्वितीय में मृदुबन्ध का तथा द्वितीय दो चरणों अर्थात् तृतीय और चतुर्थ में स्फुट बन्ध का उदाहरण दिया गया है। मृदुबन्ध का उदाहरण– 'कोकिलालापवाचालः मामेति मलयानिलः अर्थात् कोयलों की कूजन से मुखरित मलयानिल मेरी ओर आ रहा है। स्फुटबन्ध का उदाहरण 'उच्छलच्छीकराच्छाच्छनिर्झराम्भः कणोक्षितः अर्थात् उछलते हुए जलकणों से अत्यन्तनिर्मल झरने की जलबूदों से संसिक्त (आर्द्र) मलयानिल मेरी ओर आ रहा है।

(२) भोज ने इस पद्य को बन्धवैषम्य के दोष के रूप में उद्धृत किया है; क्योंकि इस श्लोक के पूर्वार्ध में मृदु तथा उत्तरार्ध में स्फुट (कठोर) नामक समता है; किन्तु दण्डी के अनुसार श्लोक में अथवा पद्यैकभाग में तीनों मृदु, स्फुट तथा मिश्र में से एक बन्ध का संयोजन समता गुण है।

(मध्यमबन्धस्य बन्धवैषम्यस्य च निदर्शनम्)

चन्दनप्रणयो[१]द्गन्धिर्मन्दो मलयमारुतः ।
स्पर्धते रुद्धमद्धैर्यो वररामाननानिलैः[२]।।४९।।

अन्वय— चन्दनप्रणयोद्गन्धिः रुद्धमद्धैर्यः मन्दः मलयमारुतः वररामाननानिलैः स्पर्धते ।

शब्दार्थ— चन्द्रनप्रणयोद्गन्धिः = चन्दन के संसर्ग से सुगन्धित । रुद्धमद्धैर्यः = रोक दिया गया (रुद्ध कर दिया गया है) मेरा धैर्य (मद्धैर्य) जिनके द्वारा ऐसा, मेरे धैर्य को रोक देने वाला, मेरे धैर्य को नष्ट कर देने वाला, मुझे अधीर बना देने वाला। मन्दः = मन्द । मलयमारुतः = मलयपवन, मलयानिल । वररामाननानिलैः = सुन्दर युवतियों (वररामा) के मुखों से (निकली हुई) वायु से । स्पर्धते = स्पर्धा कर रहा है, होड़ लगा रहा है ।

अनुवाद— चन्दन के संसर्ग से सुगन्धित और मुझे अधीर बना देने वाला (मेरे धैर्य को विनष्ट कर देने वाला) मन्द मलयपवन सुन्दर युवतियों के मुखों से (निकलती हुई) वायु (निःश्वास) से स्पर्धा कर रहा है ।

संस्कृतव्याख्या— श्लोकेऽस्मिन् मध्यमबन्धस्य बन्धवैषम्यस्य चोदाहरणं निर्दिशति- **चन्दनेति** । चन्दनादिकं पादद्वयं मध्यमबन्धस्य स्पर्धते इत्यादिकं पादद्वयं बन्धवैषम्यस्य निदर्शनम् । **चन्दनप्रणयोद्गन्धिः** चन्दनेन यः प्रणयः प्रेम संसर्ग इत्यर्थः ते संसर्गेण उद्गन्धिः निःसरत्सुगन्धयुक्तः **रुद्धमद्धैर्यः** रुद्धं विनष्टं मम धैर्यं धीरत्वं येन तादृशः **मलयमारुतः** मलयपवनः **वररामाननानिलैः** वराः सौन्दर्ययुक्ताः याः रामाः युवतयः तासां आननानां मुखानाम् अनिलैः पवनैः **स्पर्धते** स्पर्धां करोति । उत्तरार्धे पादद्वये 'स्पर्धते रुद्धमदधैर्यः' इत्यस्मिन्पादे स्फुटबन्धः 'वररामाननानिलैः' इत्यत्र च मृदुबन्धः । द्वयो स्फुटमृदुबन्धयोः एकत्र संयोजनादत्र बन्धवैषम्यं विद्यते ।

विशेष—

(१) इस कारिका के चार चरणों में से प्रथम दो चरणों अर्थात् प्रथम और द्वितीय चरण में मध्यमबन्ध तथा उत्तरवर्ती दो चरणों अर्थात् तृतीय और चतुर्थ चरण में बन्धवैषम्य का उदाहरण दिया गया है। मध्यमबन्ध का उदाहरण- 'चन्दनप्रणयोद्गन्धिर्मन्दो मलयमारुतः' अर्थात् चन्दन के संसर्ग से सुगन्धित यह मलयपवन है। बन्धवैषम्य का उदाहरण- 'स्पर्धते रुद्धमद्धैर्यः वररामाननानिलैः' अर्थात् मुझे

---

(१) प्रसवो
(२) मुखालिलैः

अधीर बना देने वाला (मन्द मलयपवन) सुन्दर युवतियों के मुखों से (निकलती हुई) वायु (निःश्वास) से स्पर्धा करता है ।

(२) श्लोक के पूर्वार्ध में च न प इत्यादि मृदुवर्णों तथा द ग इत्यादि स्फुट (कठोर) वर्णों का संयोजन हुआ है; अतः यहाँ मध्यमबन्ध है ।

(३) उत्तरार्ध के प्रथम चरण 'स्पर्धते रुद्धमद्धैर्यों' में सकार, धकार इत्यादि स्फुट वर्णों का प्रयोग होने से स्फुटबन्ध तथा द्वितीय चरण 'वररामाननानिलैः' में लकार इत्यादि मृदु वर्णों का प्रयोग होने से मृदुबन्ध है । इस प्रकार यहाँ पद्यैकदेश में दोनों बन्धों का एकत्र संयोजन होने से बन्धवैषम्य है ।

इत्यनालोच्य वैषम्यमर्थालङ्कारडम्बरम्[1] ।
अपेक्षमाणा[2] ववृते[3] पौरस्त्या काव्यपद्धतिम् ।।५०।।

अन्वय— इति वैषम्यम् अनालोत्य अर्थालङ्कारडम्बरम् अपेक्षमाणा पौरस्त्या काव्यपद्धतिः ववृते ।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार । वैषम्यं = बन्धवैषम्य (बन्ध की विषमता) को । अनालोच्य = आलोचना न करके, विचार न करके, ध्यान में न रख कर, उपेक्षित करके । अर्थालङ्कारडम्बरम् = अर्थ (प्रतिपाद्य विषय) और अलङ्कार (अनुप्रास इत्यादि) के उत्कर्ष (उत्कृष्टता) को । अपेक्षमाणाः = अपेक्षा करती हुई, समादर करती हुई । पौरस्त्या = गौडीया । काव्यपद्धतिः = काव्यपद्धति, काव्यविधा, रचनापद्धति । ववृते = प्रवृत्त हुई है ।

अनुवाद— इस प्रकार के बन्धवैषम्य (रचनापद्धति की विसमता) को अपेक्षित करके अर्थ (प्रतिपाद्य विषय) और (अनुप्रासादि) अलङ्कार की उत्कृष्टता का समादर करती हुई गौडीया रचनापद्धति प्रवृत्त हुई है।

संस्कृतव्याख्या— गौडीयमार्गानुयायिभिः बन्धवैषम्यं उपेक्षितमिति निर्दिशत्यत्र- **इत्यनालोच्येति** । **इति** एवं प्रकारके बन्धत्रये **वैषम्यं** बन्धस्य विषमताम् **अनालोच्य** अनावलोक्य अविचार्य वा उपेक्ष्येत्यर्थः, **अर्थालङ्कारडम्बरम्** अर्थानां काव्यप्रतिपाद्यानामर्थानाम् अनुप्रासादीनां अलङ्काराणां च डम्बरम् उत्कर्षं **अपेक्षमाणा** समादराभिलाषयन्ती **पौरस्त्या** गौडीया **काव्यपद्धतिः** पद्यरचनापद्धतिः **ववृते** प्रावर्तत । गौडीयाः कवयः केवलानुप्रासाद्यलङ्कारप्रवणमतयः मृदुस्फुटरचनाशालितया विषमगुणामपि

(१) डम्बरौ
(२) अवेक्षमाणा
(३) ववृधे

रचनां अत्याद्रियन्ते काव्यत्वे च स्वीकुर्वन्ति। परञ्च वैदर्भमार्गस्य कवयः अर्थांशे तद-चित्तयो अनुप्रासाद्यलङ्कारं च बहुमन्यमानाः बन्धरचनायामेवादरं पुष्णन्ति न तु बन्धवैषम्ये।

विशेष—

(१) इस कारिका में बन्धवैषम्य-विषयक गौडीय और वैदर्भ मार्ग के अनुयायियों में मतभेद होना निर्दिष्ट किया गया है। वैदर्भ मार्ग के अनुसार काव्य में बन्धसमता का गुण होना चाहिए; किन्तु गौडीय मार्गानुयायी वैदर्भ मार्ग की इस अनिवार्यता पर विशेष बल नहीं देते। उनके अनुसार विषमबन्ध वाले काव्य में भी यदि अतिशयोक्तिरूप धार्मिक चमत्कार और अनुप्रासादि शाब्दिक चमत्कार हों तो वह काव्य भी ग्राह्य हैं। इस प्रकार गौडीय-परम्परा शब्द और अर्थ से सम्बन्धित चमत्कार को बन्धवैषम्य की अपेक्षा अधिक महत्त्व देती है।

(माधुर्यगुणनिरूपणम्)

मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः।
येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रताः ।।५१।।

अन्वय— रसवत् मधुरं वाचि वस्तुनि अपि रसस्थितिः। येन मधुना मधुव्रताः इव धीमन्तः माद्यन्ति।

शब्दार्थ— रसवत् = रसयुक्त, सरस (वाक्य)। मधुरं = माधुर्य गुण से समन्वित (युक्त), मधुरगुण वाला। वाचि = शब्द में, वाणी में। वस्तुनि अपि = और अर्थ में भी,। रसस्थितिः = रस (मधुरता) की स्थिति, रस (मधुरता) की विद्यमानता (होती है)। येन = जिस (मधुरता) से। मधुना = मधु से, पुष्परस से। मधुव्रताः इव = भ्रमरों के समान। धीमन्तः = बुद्धिमान् लोग, सहृदय लोग। माद्यन्ति = आह्लादित होते हैं, आनन्दित होते है।

अनुवाद— सरस (मधुर) वाक्य माधुर्य गुण वाला होता है। (वह) रस की स्थिति (मधुरता की विद्यमानता) शब्द और अर्थ (दोनों) में होती है, जिस (मधुरता की विद्यमानता) से सहृदय लोग उसी प्रकार आनन्दित (आह्लादित) होते हैं, जैसे मधु (पुष्परस) से भ्रमर (भवरें) आनन्दित होते हैं।

संस्कृतव्याख्या— माधुर्यगुणं वर्णयत्यत्र- **मधुरमिति**। **रसवत्** सरसं मधुरता-युक्तमित्यर्थः, वाक्यं **मधुरं** माधुर्यगुणयुक्तं भवति। **वाचि** शब्दे **वस्तुनि अपि** अर्थे च **रसस्थितिः** रसस्य माधुर्यस्य स्थितिः विद्यमानता जायते; **येन** माधुर्येण **धीमन्तः** बुद्धिमन्तः सहृदयजनाः तथैव **माद्यन्ति** आनन्दमनुभवन्ति यथा **मधुना** पुष्परसेन **मधुव्रताः** भ्रमराः आह्लादयन्ति। अत्र रसपदः माधुर्यार्थे प्रयुक्तः न तु शृङ्गारादीनां ग्रहणार्थम्।

यस्य काव्यस्यासकृत्परिशीलनेऽपि सहृदयजनाः वैरस्यं न आसादयन्ति तन्मधुरं काव्यमिति।

विशेष—

(१) रसवत् वाक्य को मधुर कहा जाता है। परिणामतः रस तथा माधुर्य एक ही वस्तु है।

(२) आचार्यों ने गुण को साक्षात् या परम्परया रस का उपकारक माना है। यहाँ माधुर्य गुण को ही रसस्वरूप (रसवत्) कहा गया है; क्योंकि व्यञ्जकतया रस शब्द और अर्थ दोनों में रहता है।

(३) रस का स्वरूप बतलाने के लिए यहाँ उपमा का प्रयोग किया गया है- जिस प्रकार पुष्परस से भ्रमरगण मत्त हो जाते हैं उसी प्रकार जिस शब्दार्थजन्य आनन्दातिरेक से सहृदयगण आह्लादित हो जाते हैं, वह रस कहलाता है।

(४) माधुर्य गुण को दो भागों में बाँटा गया है- शब्दमाधुर्य और अर्थमाधुर्य। इनके स्वरूप का सोदाहरण स्पष्टीकरण आने वाली कारिकाओं में किया गया है।

यया कयापि[१] श्रुत्या यत्समानमनुभूयते।
तद्रूपा हि पदासत्तिः सानुप्रासा रसावहाः ॥५८॥

अन्वय— यया कया अपि श्रुत्या यत् समानम् अनुभूयते तद्रूपा सानुप्रासा पदासत्तिः रसावहाः (भवति)।

शब्दार्थ— यया कया अपि = जिस किसी भी। श्रुत्या = श्रुति से, उच्चारण से यत् = जो। समानम् = (पूर्वोच्चारण के) समान। अनुभूयते = अनुभव किया जाता है, आस्वादन किया जाता है। तद्रूपा = उसी रूप वाली, उसी से समन्वित। सानुप्रासा = अनुप्रासयुक्त। पदासत्तिः = पदों का अतिसामीप्य, पदों की अव्यवहित सन्निकटता, अव्यवहित पदप्रयोग (पदसंयोजन)। रसावहा = रसव्यञ्जक, श्रुतिसुभगता का पोषक, रसपोषक।

अनुवाद— जिस किसी भी उच्चारण (श्रुति) से जो (पहली बार हुए उच्चारण के) समान अनुभव किया जाता है, उसी स्वरूप वाली (उसी से समन्वित) अनुप्रासयुक्त अव्यवहित पदप्रयोग रसव्यञ्जक (रसपोषक) होता है।

संस्कृतव्याख्या- माधुर्यकारणं रसपोषकत्वं प्रतिपादयत्यत्र- ययेति। **यया कया अपि** यया कयाचिदपि कण्ठ्यया तालव्ययाऽन्यथा वा श्रुत्या उच्चारणेन **यत् समानम्** पूर्वोच्चारितश्रुतिसदृशम् **अनुभूयते** आस्वाद्यते **तद्रूपा** तादृशसादृश्यस्वरूपा **सानुप्रासा**

(१) कयाचिच्छ्रुत्या

अनुप्रासयुक्ता **पदासत्तिः** अव्यहितपदसंयोजनं **रसावहा** रसं श्रुतिसुभगत्वं अवाहति विस्तारयतीति तादृशी, रसपोषका इत्यर्थः भवतीति शेषः। कारिकायामस्यां शब्दरसः प्रतिपादितः अर्थरसस्तु पश्चाद् वर्णितः भविष्यति।

विशेष—

(१) जिस पदसमुदाय में समान कण्ठ, तालु इत्यादि स्थान वाले वर्णों का व्यवधानरहित उच्चारण किया जाता है, उसे श्रुत्यनुप्रास कहा जाता है। ऐसा श्रुत्यनुप्रास वाला पदसमुदाय रसव्यञ्जक होता है। कारिका में प्रयुक्त अनुप्रास पद श्रुत्यनुप्रास का ही बोधक है।

(२) यहाँ रस पद का प्रयोग शब्द रस के लिए किया गया है। अर्थ-विषयक रस का विवेचन इसी ग्रन्थ में आगे किया जायेगा।

(३) यद्यपि यह अलङ्कार के निरूपण का प्रकरण नहीं है तथापि वैदर्भगौड़ीय मार्ग के भेद को प्रदर्शित करने के लिए प्रसङ्गतः श्रुत्यनुप्रास का लक्षण और उदाहरण दे दिया गया है। वाग्रस (शब्दरस) के अन्तर्गत श्रुत्यनुप्रास और वर्णानुप्रास दोनों आतें हैं। इसमें श्रुत्यनुप्रास वैदर्भमार्गाभिमत तथा वर्णानुप्रास गौडीयमार्गाभिमत है।

(श्रुत्यनुप्रासयुक्तपदासत्त्याः निदर्शनम्)

एष राजा यदा लक्ष्मीं[१] प्राप्तवान् ब्राह्मणप्रियः।
तदा[२]प्रभृति धर्मस्य लोकेऽस्मिन्नुत्सवो[३]ऽभवत्॥५३॥

अन्वय— ब्रह्मणप्रियः एषः राजा यदा लक्ष्मीं प्राप्तवान् तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् धर्मस्य उत्सवः अभवत्।

शब्दार्थ— ब्राह्मणप्रियः = ब्राह्मण हैं प्रिय जिसको ऐसा, ब्राह्मणों से प्रेम करने वाला अथवा (दान इत्यादि के कारण) ब्राह्मणों का प्रिय। एषः = यह। यदा = जब से। लक्ष्मीं = लक्ष्मी को, राज्यलक्ष्मी को। प्राप्तवान् = प्राप्त किया है, पाया है। तदाप्रभृति = तब से। लोकेऽस्मिन् = इस लोक में, इस संसार में, इस राज्य में। धर्मस्य = धर्म की। उत्सवः = उत्सव, अभ्युन्नति अभिवृद्धि। अभवत् = हुई है।

अनुवाद— ब्राह्मणों से प्रेम करने वाला अथवा (दानादि के कारण) ब्राह्मणों का प्रिय यह राजा जबसे राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया है (शासनारूढ़ हुआ है) तब से इस राज्य में धर्म की अभ्युन्नति (अभिवृद्धि) हुई है।

---

(१) राज्यं
(२) ततः
(३) उद्भवो

संस्कृतव्याख्या— श्रुत्यानुप्रासयुक्ताया: पदासत्त्या: निदर्शनं प्रतिपादयत्यत्र- **एष राजेति**। **ब्राह्मणप्रियः** ब्राह्मणा: प्रिया: यस्य तादृश: दानादिना ब्राह्मणानां प्रिय: वा **एषः** साम्प्रतं वर्णित: **राजा** नृप: **यदा** यावत् कालात् **लक्ष्मीं** राज्यलक्ष्मीं **प्राप्तवान्** अधिगतं कृतवान् शासनारूढमभवत् **तदाप्रभृति** तावत्कालात् **लोकेऽस्मिन्** अस्मिन् राज्ये **धर्मस्य उत्सवः** अभ्युन्नति: **अभवत्** जात: । श्लोकेऽस्मिन् ष-र, ज-य, इत्यादिसमानोच्चारणस्थानीयै: वर्णै: पदासत्ति: विद्यते ।

विशेष—

(१) यह श्रुत्यनुप्रासयुक्त पदासत्ति का उदाहरण दिया गया है।

(२) इस उदाहरण में समान स्थान वाले वर्णों- ष-र, ज-य, द-ल, म-प, त-व-न, ब-म, म-ण, त-द, प-भ, त-ध, न-त-स तथा भ-व वर्णों से युक्त पदों की आसक्ति (अत्यधिक सन्निकटता) है अत: यहाँ श्रुत्यनुप्रास है ।

(३) ऐसा ही पद संयोजन वैदर्भमार्गानुयायियों को अभिमत है किन्तु गौडीय मार्ग के समर्थक ऐसी पदयोजना को अभीष्ट नहीं मानते ।

इतीदं नादृतं गौडैरनुप्रासस्तु तत्प्रियः ।
अनुप्रासादपि प्रायो वैदर्भैरिदमिष्यते ।।५४।।

अन्वय— इति इदं गौडै: न आदृतम् अनुप्रास: तु तत्प्रिय: (परञ्च) वैदर्भै: अनुप्रासात् अपि इदम् इष्यते ।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार । इदं = यह (पूर्व में उदाहृत श्रुत्यनुप्रासयुक्त शब्दमाधुर्य) । गौडै: = गौडीयानुयायियों के द्वारा । न आदृतं = समादृत (स्वीकृत) नहीं है । अनुप्रास: तु = अनुप्रास (वर्णानुप्रास) । तत्प्रिय: = उनका प्रिय है, उन्हें प्रिय है । वैदर्भै: = वैदर्भमार्ग के समर्थकों द्वारा । अनुप्रासात् = अनुप्रास (= वर्णानुप्रास) की अपेक्षा। इदं = यह (श्रुत्यनुप्रास) । प्राय: = बहुत अधिक। इष्यते = अभीष्ट है, वाञ्छित है, अभिलषित है, प्रिय है ।

अनुवाद— इस प्रकार यह (पूर्व में उदाहृत श्रुत्यानुप्रासयुक्त शब्दमाधुर्य) गौडीय-मार्ग के अनुयायियों द्वारा समादृत (स्वीकृत) नहीं है, वर्णानुप्रास उन्हें प्रिय है; किन्तु वैदर्भमार्ग के समर्थकों को वर्णानुप्रास की अपेक्षा यह (श्रुत्यनुप्रास) बहुत अधिक प्रिय अभीष्ट है ।

संस्कृतव्याख्या— पूर्वोक्तं श्रुत्यानुप्रासयुक्तं शब्दमाधुर्यं वैदर्भानुयायिभि: समादरितं गौडीयसमर्थकैश्च न स्वीकृतं भवतीति प्रतिपादयत्यत्र- **इतीदमिति** । **इति** एवम्भूतं इदं पूर्वोक्तं श्रुत्यानुप्रासयुतं शब्दमाधुर्यं **गौडैः** गौडीयमार्गानुयायिभि: समानश्रुतिवर्णानाम्

आपत्तिः रसोपकारकचमत्कारशून्यतया न **आदृतं** न स्वीकृताम् । तत्स्थाने **अनुप्रासः** तु वर्णानुप्रासस्तु तत्प्रियः तेषां अभीष्टः परञ्च **वैदर्भैः** वैदर्भमार्गानुयायिभिः **अनुप्रासात्** अनुप्रासापेक्षया श्रुत्यानुप्रासं **प्रायः** प्रायेण **इष्यते** स्वीक्रियते । पूर्वप्रदर्शितं श्रुत्यानुप्रास-युतं काव्यं समानश्रुतिवर्णानां रसोपकारचमत्कारशून्यतया नायमलङ्कारोऽतोऽत्र सत्यपि माधुर्यं नाम गुणो नोपपद्यते इति गौडीयानुयायिनां भावः । गौडीयाः सदृशवर्णानां चम-त्कृतिमेव रसावहां मन्यन्ते । परञ्च वैदर्भाः वर्णानुप्रासापेक्षया श्रुत्यानुप्रासमधिकं समाद्रि-यन्ते इति भावः ।

विशेष—

(१) समान स्थान वाले वर्णों की आवृत्ति श्रुत्यानुप्रास कहलाता है जैसा कि पूर्ववर्ती उदाहरण से स्पष्ट है तथा समान वर्णों की आवृत्ति वर्णानुप्रास कहा जाता है। वर्णानुप्रास का लक्षण प्रसङ्गवशात् आगे की कारिका में दिया जायेगा।

(२) माधुर्य गुणविषयक अनुप्रास संयोजन के विषय में गौडीय आचार्यों और भैदर्भ आचार्यों में मतभेद है। वैदर्भ मार्ग वालों के अनुसार काव्य में श्रुत्यानुप्रास वाले पदों का संयोजन होना अभीष्ट है। वे वर्णानुप्रास की अपेक्षा श्रुत्यानुप्रास को काव्य-संयोजन में अधिक महत्त्व देते हैं; किन्तु गौडीय आचार्य श्रुत्यानुप्रास को रस-पोषकता और अलङ्कार-चमत्कारिता से रहित मानकर काव्य में स्थान देना नहीं पसन्द करते। उसके स्थान पर वर्णानुप्रास को महत्त्व प्रदान करते हैं।

वर्णावृत्तिरनुप्रासः पादेषु पदेषु च ।
पूर्वानुभवसंस्कारबोधिनी यद्यदूरता ।।५५।।

अन्वय— पादेषु पदेषु च यदि पूर्वानुभवसंस्कारबोधिनी अदूरता वर्णावृत्तिः अनुप्रासः ।

शब्दार्थ— पादेषु = (पद्य के) चारों चरणों में। पदेषु = और पदों में। पूर्वा-नुभवसंस्कारबोधिनी = पहले सुने गये (अनुभव किये गये) संस्कार को उद्बोधित करने वाली (जगाने वाली)। अदूरता = निकटस्थिति वाली। वर्णावृत्तिः = वर्ण की आवृत्ति, वर्णों का एक से अधिक बार प्रयोग। अनुप्रासः = अनुप्रास कहा जाता है।

अनुवाद— (पद्य के) चारों चरणों में और पदों में यदि पहले सुने गये (अनुभव किये गये) संस्कार को उद्बोधित करने वाली (जगाने वाली) वर्णावृत्ति (वर्णों का एक से अधिक बार प्रयोग) (होता है तो) अनुप्रास कहा जाता है।

संस्कृतव्याख्या— गौडानुयायिनां विशेषेणाभीष्टम् अनुप्रासं लक्षयत्यत्र-**वर्णा-वृत्तिरिति** । **पादेषु** पद्यस्य चरणेषु **पदेषु च** सुप्तिङन्तेषु शब्देषु च **यदि पूर्वानुभव-संस्कारबोधिनी** पूर्वं उच्चारितस्य वर्णस्य यः अनुभवः श्रोत्रग्रहणं तज्जायमानः यः

संस्कारः भावनाविशेषः तं बोधयति उद्बोधितं जागरितं करोतीति तादृशी **अदूरता** अव्यवधानेनाल्पव्यवधानेन वा अवस्थिति तद्युक्ता या **वर्णावृत्तिः** वर्णानां पुनरुच्चारणं स **अनुप्रासः** अनुप्रासनामकोऽलङ्कारः।

विशेष—

(१) इस कारिका में गौडानुयायियों को विशेषरूप से अभीष्ट जो अनुप्रास है, उसका लक्षण प्रस्तुत किया गया है।

(२) पद्य के चारों चरणों में या पदों में यदि समान वर्ण की आवृत्ति होती है तो वह अनुप्रास कहलाता है।

(३) कारिका में प्रयुक्त वर्ण शब्द व्यञ्जन वर्ण का बोधक है, क्योंकि स्वरों की आवृत्ति से कोई चमत्कार नहीं होता।

(४) वर्ण की आवृत्ति समीपस्थ होने पर ही चमत्कारकारिणी होती है। समीपस्थ का तात्पर्य है वर्ण की आवृत्ति या तो अव्यवहित हो या दो-तीन वर्णों के व्यवधान-सहित हो जिससे उस पुनरुच्चारित वर्ण में पहली बार उच्चारित वर्ण की श्रुति-गोचरता से उत्पन्न संस्कार उद्बुद्ध हो। अधिक व्यवधान होने पर उसमें कोई चमत्कार नहीं रह जाता। इसीलिए कारिका में पूर्वानुभवसंस्कारबोधिनी अदूरता शब्द का प्रयोग किया गया है।

(५) दण्डी के अनुसार लक्षित उक्त अनुप्रास को उत्तरवर्ती विश्वनाथ आदि आचार्यों ने छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास से अभिहित किया है। विश्वनाथ के अनुसार व्यञ्जनसमुदाय का एक बार अथवा अनेक बार आवृत्ति छेकानुप्रास और एक व्यञ्जन की एक बार आवृत्ति वृत्यनुप्रास कहलाती है।

(पादगतानुप्रासस्य निदर्शनम्)

चन्द्रे शरन्निशोत्तंसे कुन्दस्तबकसन्निभे[१]।
इन्द्रनीलनिभं लक्ष्म सन्दधात्यलिनः[२] श्रियम्॥५६॥

अन्वय— शरन्निशोत्तंसे कुन्दस्तबकसन्निभे चन्द्रे इन्द्रनीलनिभं लक्ष्म अलिनःश्रियं सन्दधाति।

शब्दार्थ— शरन्निशोत्तंसे = शरत्कालीन रात्रि के शिरोभूषण रूप। कुन्दस्त-बकसन्निभे = कुन्द के फूलों के गुच्छे के सदृश। चन्द्रे = चन्द्रमा में। इन्द्रनीलनिभं = नीलममणि (इन्द्रनील) के समान। लक्ष्म = चिह्न, कलङ्क। अलिनः = भ्रमर की।

(१) विभ्रमे
(२) अनिलः

श्रियं = शोभा को, सुन्दरता को। दधाति = धारण कर रहा है।

अनुवाद— शरत्कालीन रात्रि के शिरोभूषण और कुन्द के पुष्पगुच्छ के समान (उज्ज्वल) चन्द्रमा में नीलम के समान (नीले वर्ण वाला) चिह्न (कलङ्क) भ्रमर की शोभा (सुन्दरता) को धारण कर रहा है (अर्थात् भ्रमर के समान लग रहा है।

संस्कृतव्याख्या— पादगतस्यानुप्रासस्य निदर्शनं ददात्यत्र- **चन्द्रे इति**। **शरन्निशोत्ते** शरन्निशायाः शरत्कालीनरात्र्याः उत्तंसे शिरोभूषणस्वरूपे **कुन्दस्तबकसन्निभे** कुन्दस्य कुन्दाभिधेयस्य पुष्पविशेषस्य स्तबकवत् पुष्पगुच्छवत् शुभ्रे **चन्द्रे** चन्द्रमसि **इन्द्रनीलनिभं** इन्द्रनीलमणिसदृशं **लक्ष्म** चिह्नं कलङ्कमित्यर्थः **अलिनः** भ्रमरस्य **श्रियं** शोभां **दधाति** धारयति। पद्येऽस्मिन् प्रतिचरणेषु क्रमेण चन्द्र, कुन्द, इन्द्र, सन्द इत्येतेषु नकारदकारयोः आवृत्तिरिति पादगतोऽनुप्रासालङ्कारः। अनुप्रासोऽयं स्ववर्ण्यशृङ्गारविभागभूतं चन्द्रमसमुपस्कुर्वाणः शृङ्गारं पोषयति इत्यर्थनिष्ठं माधुर्यमवगन्तव्यम्।

विशेष—

(१) यह श्लोक पादगत अनुप्रास का उदाहरण है। इस पद्य के प्रत्येक चरणों में क्रमशः चन्द्र, कुन्द, इन्द्र, सन्द में नकार और दकार की आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ पादगत अनुप्रास है।

(पदगतानुप्रासस्य निदर्शनम्)

चारु चान्द्रमसं भीरु बिम्बं पश्यैतदम्बरे।
मन्मनो मन्मथाक्रान्तं निर्दयं हन्तु[१]मुद्यतम्॥५७॥

अन्वय— भीरु, मन्मथाक्रान्तं मन्मनः निर्दयं हन्तुम् उद्यतं अम्बरे एतत् चारु चन्द्रमसं बिम्बम् पश्य।

शब्दार्थ— भीरु = हे भयभीत (डरपोक) प्रिये ! मन्मथाक्रान्तं = कामदेव द्वारा पीड़ित। मन्मनः = मेरे मन को। निर्दयं = निर्दयतापूर्वक, क्रूरतापूर्वक। हन्तुं = मारने के लिए, प्रहार करने के लिए। उद्यतं = उद्यत, तैयार। अम्बरे = आकाश में। एतत् = इस। चारु = मनोहर, सुन्दर। चान्द्रमसं = चन्द्रमा से सम्बन्धित। बिम्बं = बिम्ब को, मण्डल को। पश्य = देखो।

अनुवाद— हे भयभीत (डरपोक) प्रियतमे ! कामदेव द्वारा पीडित मेरे मन को निर्दयतापूर्वक (क्रूरतापूर्वक) प्रहार करने के लिए उद्यत (तैयार) आकाश में (स्थित) इस मनोहर चन्द्रमण्डल को देखो।

---

(१) कर्त्तुं

संस्कृतव्याख्या— पदगतस्यानुप्रासस्य निदर्शनं ददात्यत्र-**चारु इति**। **भीरु** हे भयशीले प्रियतमे, **मन्मथाक्रान्तं** कामेन पीडितं **मन्मनः** मदीयं चित्तं **निर्दयं** क्रूरतापूर्वकं **हन्तुं** प्रहर्तुं **अम्बरे** आकाशे विद्यमानं **एतत्** पुरोदृश्यमानं **चारु** मनोहरं **चान्द्रमसं बिम्बं** चन्द्रसम्बन्धिनं बिम्बं चन्द्रबिम्बं **पश्य** विलोकय। श्लोकेऽस्मिन् पद्यस्य प्रथमे चरणे चारु-चन्द्र-भीरु इत्येतेषु पदेषु च-रु वर्णयोः आवृत्तिः अतः पदगतः वृत्यनुप्रास द्वितीये पादे च मकारबकारयोः आवृत्तिरित्यत्रापि पदगतः वृत्यनुप्रासः।

विशेष—

(१) इस पद्य में पदगत अनुप्रास का संयोजन हुआ है। इस पद्य के प्रथम चरण में चारु-चन्द्र और भीरु पदों में च और रु वर्ण की आवृत्ति हुई है। अतः पदगत वृत्यनुप्रास है और द्वितीय चरण में भी बिम्ब अम्बर पद में मकार और बकार के संयोग की आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ भी पदगत वृत्यनुप्रास है।

इत्यनुप्रासमिच्छन्ति नातिदूरान्तरश्रुतिम्[1]।
न तु रामामुखाम्भोजसदृशश्चन्द्रमा इति ।।५८।।

अन्वय— न अतिदूरान्तरश्रुतिम् इति अनुप्रासम् इच्छन्ति। चन्द्रमा रामामुखाम्भोजसदृशः इति तु न।

शब्दार्थ— न अतिदूरान्तरश्रुतिं = जिसमें सदृशश्रुति अत्यधिक दूर न स्थित हो, अत्यधिक दूर न स्थित अर्थात् समीप में स्थित (सदृश) श्रुति (उच्चारण) वाले। इति अनुप्रासम् = अनुप्रास को। इच्छन्ति = (कवि लोग) अभीष्ट समझते है, स्वीकार करते हैं। चन्द्रमाः = चन्द्रमा। रामामुखाम्भोजसदृशः = युवती के मुखकमल के समान। इति = इस प्रकार के (अनुप्रास को)। न = स्वीकार नहीं करते, अभीष्ट नहीं मानते।

अनुवाद— जिसमें सदृशश्रुति (उच्चारण) अधिक दूर न स्थित हो (अर्थात् जिसमें सदृशश्रुति समीपस्थ हो ऐसे उक्त प्रकार वाले अनुप्रास को) (कवि लोग) अभीष्ट मानते हैं। 'रामामुखायम्भोजसदृशश्चन्द्रमा' अर्थात् 'चन्द्रमा युवती के मुखकमल के समान हैं इस प्रकार के (दूरस्थ सदृशश्रुति वाले अनुप्रास को वे) स्वीकार नहीं करते।

संस्कृतव्याख्या— पूर्वं ख्यापितेऽनुप्रासलक्षणे 'पूर्वानुभवसंस्कारबोधिनी यद्यदूरता' इत्यस्य कथनस्य पुष्टिं प्रतिपादयत्यत्र-**इत्यनुप्रासमिति**। **न अतिदूरान्तरश्रुतिं** नातिबिलम्बेणोच्चार्यमाणं सदृशवर्णं समीवर्तिनं सदृशवर्णमित्यर्थः, इति एतादृशम् **अनुप्रासम् इच्छन्ति** अभिलषन्ति गौडा वैदर्भीयाश्च कवयः। न तु दूरान्तरश्रुतिं यतो हि

विलम्बेनोच्चारेण पूर्वानुभवजातस्य संस्कारस्य विलोपः भवति। दूरान्तरश्रुतिः अनुप्रासस्य निदर्शनेन परिपुष्टिं दर्शयति **चन्द्रमा** चन्द्रः **रामामुखाम्भोजसदृशः** रामायाः युवत्याः मुखाम्भोजसदृशः मुखकमलसमः विद्यते। रामामुखाम्भोजसदृशश्चन्द्रमा इत्यत्र रामा चन्द्रमा इत्यनयोः दूरस्थितयोः पदयोः मा इत्यस्य आवृत्तिः विद्यते परञ्च दूराधिक्येन मा इत्यस्य पूर्वानुभवजातस्य संस्कारस्य आवृत्तिकालयावत् विलोपः भवति। अत एव कवयः एतादृशं अनुप्रासं न स्वीक्रियन्ते।

विशेष—

(१) पहले प्रतिपादित अनुप्रास-लक्षण के प्रसङ्ग में यह कहा गया है कि अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति 'पूर्व अनुभव से उत्पन्न संस्कार की उद्बोधक हो और पूर्वश्रुति से अधिक दूर न हो— समीपस्थ हो, इसी तथ्य को उदाहरण द्वारा सम्पुष्ट किया गया है।

(२) 'रामामुखाम्भोजसदृशश्चन्द्रमा' इस उदाहरण में रामा और चन्द्रमा दोनों में मा की आवृत्ति हुई है। प्रथम मा से बहुत बाद में कई वर्णों के व्यवधान के पश्चात् द्वितीय मा की श्रुति होती है। द्वितीय मा के श्रुतिगोचर होते-होते पूर्ववर्ती 'मा' के अनुभवजन्य संस्कार का लोप हो जाता है, उसका उद्बोध नहीं रह पाता। अतः ऐसे अनुप्रास को कवि लोग स्वीकार नहीं करते।

(बन्धपारुष्यशैथिल्ययोः गौडैः स्वीकरणम्)

स्मरः खरः खलः कान्तः कायः कोपश्च नः कृशः।
च्युतो मानोऽधिको रागो जातोऽसवो गताः ।।५९।।
इत्यादिबन्धपारुष्यं शैथिल्यं च नियच्छति।
अतो नैवमनुप्रासं दाक्षिणात्याः प्रयुञ्जते ।।६०।।

अन्वय— 'स्मरः खरः, कान्तः खलः, नः कायः कोपः च कृशः, मानः च्युतः, रागः अधिकः, मोहः जातः, असवः गताः, इत्यादि बन्धपारुष्यं शैथिल्यं नियच्छति अतः दक्षिणात्याः एवम् अनुप्रासं न प्रयुञ्जते।

शब्दार्थ— स्मरः = कामदेव, कामवासना। खरः = अत्यधिक तीक्ष्ण (तेज) है। कान्तः = प्रियतम। खलः = प्रतिकूलः (निष्ठुर, निर्दयी हो गया है)। नः = हमारा। कायः = शरीर। कोपः च = और (प्रणय) कोप। कृशः = क्षीण हो गया है। मानः = मान। च्युतः = विनष्ट (समाप्त हो गया है)। रागः = प्रियमिलन की अभिलाषा। अधिकः = अधिक, प्रबल (उत्कृष्ट हो गयी है)। मोहः = मूर्च्छा। जातः = उत्पन्न (जागृत) हो रही है। असवः = प्राण। गताः निकलने वाले हैं। इत्यादि = इत्यादि (शब्द-संयोजन)। बन्धपारुष्यं = बन्ध की कठोरता को। शैथिल्यं

च = और (बन्ध की) शिथिलता को। नियच्छति = ज्ञापित (बोधित) करते हैं। अतः = इसलिए। दक्षिणात्याः = वैदर्भमार्ग के अनुयायी लोग। एवं = इस प्रकार वाले। अनुप्रासं = अनुप्रास को। न = नहीं। प्रयुज्यते = प्रयोग में लाते हैं, स्वीकार करते हैं।

अनुवाद— "कामदेव (कामवासना) अत्यधिक तेज है, प्रियतम प्रतिकूल (विपरीत, निष्ठुर) है, मेरा शरीर (क्षीण हो गया है) और प्रणय-कोप क्षीण (समाप्त) हो गया है, मान विनष्ट हो गया है; प्रियमिलन की अभिलाषा उत्कट हो गयी है, मूर्च्छा उत्पन्न (जागृत) हो गयी है, और प्राण निकलने वाले हैं", इत्यादि (शब्दसंयोजन) परुषता (कठोरता) और शैथिल्य (शिथिलता) को ज्ञापित (बोधित) करते हैं, अतः वैदर्भमार्ग के अनुयायी लोग इस प्रकार वाले अनुप्रास को प्रयोग में नहीं लाते हैं, (स्वीकार नहीं करते हैं)।

संस्कृतव्याख्या— अलङ्कारशास्त्रे वैदर्भाणां गौडीयानां च प्रस्थानद्वयं तत्र तयोः बन्धपारुष्यशैथिल्ययोः सद्भावेऽपि समानवर्णोच्चारणविषये न तत्तदलङ्कारस्वीकरणं, गौडीयानुसारं बन्धपारुष्यशैथिल्ययोः सतोरपि केवलं समानश्रुतिवर्णोच्चारणे भवन्त्यलङ्काराः इत्येतद् मतवैषम्यं प्रपञ्चयत्यत्र— **स्मर इत्यादिना** कारिकाद्वयेन। **स्मरः** कामदेवः कामवासनेत्यर्थः, **खरः** अत्युग्रः वर्तते **कान्तः** प्रियतमः **खलः** विपरीतः अस्ति, **नः** अस्माकं **कायः** शरीरं **कोपः च** प्रणयकोपः च **कृशः** क्षीणः जातः वियोगात् शरीरं कृशं जातं प्रणयकोपश्च प्रतिनिवृत्तः जातः इत्यर्थः, **मानः** गौरवं **च्युतः** गलितः **रागः** प्रियमिलनाभिलाषः **अधिकः** प्रबलः विद्यते, **मोहः** चित्तवैक्लव्यं **जातः** प्रादुर्भूतम्; **असवः** प्राणाः **गताः** निःसरणे सम्प्रवृत्ताः वर्तते। श्लोकेऽस्मिन् प्रथमे पादे रेफखकारयोः द्वितीयेपादे ककाराणाम् चावृत्तिः अत एवात्र वृत्त्यनुप्रासः तृतीयचतुर्थपादयोः यकारादीनां दन्त्यवर्णानाम् संयोजनात् श्रुत्यनुप्रासः। श्लोकस्य पूर्वार्धे विसर्गादीनां बाहुल्यात् बन्धपारुष्यम् उत्तरार्धे च संयुक्तवर्णविरहकृतं शैथिल्यम्। **इत्यादि** एवमादि अनुप्रासोपेतं **बन्धपारुष्यं** सौकुमार्यविपर्ययं **शैथिल्यं च** श्लेषविपर्ययं च **नियच्छति** बोधयति। **अतः** अस्मात्कारणात् **एवम्** ईदृशं दोषपूर्णम् **अनुप्रासं** दाक्षिणात्याः वैदर्भमार्गसमर्थकाः **न प्रयुञ्जते** नाद्रियन्ते। गौडीयास्तु केवलमनुप्रासमात्रलोभात् ईदृशं सदोषमपि अनुप्रासं स्वीकुर्वन्तीति भावः।

विशेष—

(१) ऋ तथा ऌ- ये दो स्वर, स्पर्श वर्ग के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्पर्श वर्ण श ष स ह- ये ऊष्मवर्ण तथा विसर्ग, अनुस्वार और संयुक्त व्यञ्जन- ये सभी कठोर वर्ण कहे गये हैं। इन कठोर वर्णों के आधिक्य से काव्य का संयोजन बन्ध-पारुष्य कहलाता है।

(२) प्रस्तुत श्लोक में विसर्ग, ख, ऋ, ग, ह, ज, स, ध और संयुक्त व्यञ्जन जैसे कठोर वर्णों का अधिक प्रयोग हुआ है, अतः यहाँ बन्धपारुष्य है।

(३) शैथिल्य श्लेष गुण का विपर्यय है। पद शैथिल्य का अभिप्राय विभिन्न पदों की परस्पर अश्लिष्टता है। इस श्लोक के पूर्वार्ध के सभी पद परस्पर अलग-अलग हैं, अतः यहाँ पदशैथिल्य है।

(४) इस उदाहरण के पूर्वार्ध में र, ख, क, श तथा विसर्ग की और उत्तरार्ध में ओ की आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ अनुप्रास अलङ्कार है।

(५) वैदर्भमार्गानुयायी लोग बन्धपारुष्य और शैथिल्य दोष से युक्त अनुप्रास को अभीष्ट नहीं मानते; किन्तु गौडीयमार्ग-समर्थक इस अनुप्रास को भी स्वीकार करते हैं।

(यमकनिर्देशनम्)

आवृत्तिं[1] वर्णसङ्घातगोचरां[2] यमकं विदुः ।
तत्तु नैकान्तमधुरमतः पश्चाद् विधास्यते ।।६१।।

अन्वय— वर्णसङ्घातगोचराम् आवृत्तिं यमकं विदुः। तत् तु न एकान्तमधुरं अतः पश्चात् विधास्यते।

शब्दार्थ— वर्णसङ्घातगोचरां = वर्णसमूह अर्थात् पद से सम्बन्धित, पदविषयक। आवृत्तिं = आवृत्ति को, पुनरावर्तन को, बार-बार उच्चारण को। यमकं = यमक (अलङ्कार)। विदुः = जानना चाहिए। तत् = वह (यमक)। तु = तो। न एकान्तमधुरं = अत्यधिक मनोहर नहीं होता अथवा सर्वदा (सभी परिस्थितियों में) मधुर नहों होता। अतः = इसलिए। पश्चात् = बाद में। विधास्यते = विधान (विवेचन) किया जाएगा।

अनुवाद— पदविषयक आवृत्ति (बार-बार उच्चारण) को यमक (अलङ्कार) जानना चाहिए। वह (यमक) तो सर्वदा (सभी स्थितियों में) मधुर (मनोहर) नहीं होता, इसलिए (उसका) विवेचन बाद में किया जाएगा।

संस्कृतव्याख्या— माधुर्यपोषकम् अनुप्रासं विवेच्यात्र तत्सजातीयं यमकं निर्दिशति- **आवृत्तिमिति। वर्णसङ्घातगोचरां** वर्णानां सङ्घातः समूहः वर्णसङ्घातः पदः इत्यर्थः, पदः एव गोचरः विषयः यस्या तादृशीम् **आवृत्तिं** पुनःपुनरुच्चारणं **यमकं** यमकाभिधानम् अलङ्कारः विदुः। अनुप्रासे तु बहूनां क्वचिदेकस्वरसहितस्य व्यञ्जनस्य आवृत्तिः यमके तु स्वरसहितानां व्यञ्जनानां क्रमेण तेन तथैवानुपूर्व्येण आवृत्तिरित्युभयोः भेदः **तत् यमकं न एकान्तमधुरं** सम्पूर्णरूपेण सर्वावस्थासु वा मधुरं मधुरतायुक्तं न

(१) आवृतिमेव सङ्घात
(२) गोचरं

भवति **अतः** अस्मात्कारणात् तत् यमकं **पश्चात्** अनन्तरं **विधास्यते** शब्दालङ्कारप्रसङ्गे व्याख्यायते। यद्यपि यमकमपि अनुप्राससदृशमाधुर्यवाहकं भवति परञ्च सर्वदा सम्पूर्ण रूपेण न, यतो हि यमके वर्णसमूहावृत्तौ अर्थावबोधः तथा सारल्येन न भवति यथा अनुप्रासावृत्तौ। अतः अनुप्रासापेक्षया यमके माधुर्यस्य न्यूनत्वं बोधव्यम्।

विशेष—

(१) पद की आवृत्ति होने पर यमक अलङ्कार होता है, जबकि अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति होती है; यही दोनों अलङ्कारों में भेद है।

(२) दण्डी के अनुसार अनुप्रास और यमक में अनुप्रास में रसपोषकता यमक की अपेक्षा अधिक होती है और यमक में अनुप्रास की अपेक्षा न्यून; क्योंकि यमक में वर्णसमूह (पदों) की आवृत्ति होने पर अर्थावबोध उतनी सरलता से नहीं होता जितना अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति होने पर। इसीकारण अनुप्रास की अपेक्षा यमक में माधुर्य न्यून होता है।

(अर्थगतमाधुर्यविवेचनम्)

कामं सर्वोऽप्यलङ्कारो रसमर्थे निषिञ्चति[1]।
तथाप्यग्राम्यतैवैनं[2] भारं वहति भूयसा॥ ६२॥

अन्वय— कामं सर्वः अपि अलङ्कारः अर्थे रसं निषिञ्चति तथापि अग्राम्यता एव भूयसा एनं भारं वहति।

शब्दार्थ— कामं = यद्यपि। सर्वः अपि = सभी। अलङ्कारः = अलङ्कार। अर्थे = अर्थ में, विषयवस्तु में। रसं = रस को, मधुरता को। निषिञ्चति = सिञ्चित करते हैं, परिपुष्ट करते हैं, उद्बुद्ध करते हैं, उपपादित करते हैं। तथापि = तथापि, तो भी। अग्राम्यता = शिष्टता। एव = ही। भूयसा = प्रधान रूप से, मुख्य रूप से। एनं = इस (रस-सेचनरूप)। भारं = भार को। वहति = वहन करती है, धारण करती है।

अनुवाद— यद्यपि सभी अलङ्कार अर्थ (प्रतिपाद्यविषय) में रस (मधुरता) को सिञ्चित करते हैं अर्थात् मधुरता को परिपुष्ट (उद्बुद्ध) करते हैं तथापि अग्राम्यता (शिष्टता) ही मुख्यरूप से इस (माधुर्यरूप) भार को वहन करती है (धारण करती है)।

संस्कृतव्याख्या— शब्दगतं रसं (वाग्रसं) विवेच्यात्र अर्थगतं माधुर्यं प्रतिपादयति काममिति। **कामं** यद्यपि **सर्वः अपि अलङ्कारः** शब्दगतः शब्दालङ्कारः अर्थगतः

(१) निषिञ्चतु
(२) वैवं, वैतं

अर्थालङ्कारः **अर्थे** प्रतिपाद्यविषये **रसं** माधुर्यं **निषिञ्चति** निःषेकयति पुष्णाति वा तथापि **अग्राम्यता** वक्ष्यमाणा ग्रामत्वदोषरहितता एव **भूयसा** मुख्यत्वेन बाहुल्येन वा **एनं भारं** माधुर्यबोधकरूपं कार्यं **वहति** सम्पादयति। यद्यपि अलङ्काराणां माधुर्यपोषकत्वं विद्यते तथापि ग्राम्यतादोषरहितेषु एव स्थलेषु रसपोषकतां सम्पादयन्ति न तु ग्राम्येषु। अग्राम्य-दोषरहितान्येव वाक्यानि प्रमुखतया माधुर्यं वहन्तीति भावः।

विशेष—

(१) पदगतमाधुर्य (वाग्रस) का विवेचन करने के बाद अब यहाँ अर्थगत माधुर्य का प्रतिपादन किया जा रहा है।

(२) ग्रामीण (असभ्य) लोगों द्वारा व्यवहृत अश्लील शब्दों का प्रयोग करना ग्राम्यतादोष है। इसके विपरीत उसी अर्थ में शिष्टजनों द्वारा व्यवहृत अनुशासित शब्दों का प्रयोग करना अग्राम्यता है।

(३) केवल अलङ्कार ही माधुर्य के पोषक नहीं होते उसमें ग्राम्यता दोष भी नहीं होना चाहिए।

(४) किसी भी रूप वाली विषयवस्तु तब मधुर होती है जब उसमें अलङ्कारों का समुचित संयोजन हो और ग्राम्यता न हो।

(अर्थग्राम्यतायाः निदर्शनम्)

कन्ये कामयमानं मां न त्वं[१] कामयसे कथम्।
इति ग्राम्योऽयमर्थात्मा वैरस्याय प्रकल्पते॥६३॥

अन्वय— 'कन्ये, कामयमानं मां कथं न कामयसे' इति अयम् ग्राम्यः अर्थात्मा वैरस्याय प्रकल्पते।

शब्दार्थ— कन्ये = हे बाले। कामयमानं = कामभाव वाले, काम-भाव से युक्त, सकामी, रति के लिए उत्कण्ठित। मां = मुझको। त्वं = तुम। कथं = क्यों, किसलिए। न कामयसे = कामना नहीं करती हो, नहीं चाहती हो, स्वीकार करती हो। इति = इसी प्रकार। ग्राम्यः = ग्राम्य, अशिष्ट, अननुशासित। अयम् = यह। अर्थात्मा = अर्थ, प्रतिपाद्य विषय। वैरस्याया = रसघात के लिए, विरसता के लिए। प्रकल्पते = प्रयुक्त हुआ है।

अनुवाद– हे बाले, कामभाव वाले (रति के लिए समुत्कण्ठित) मुझको तुम किसलिए नहीं चाहती हो (स्वीकार नहीं करती हो) इस प्रकार यह ग्राम्य (अशिष्ट) अर्थ विरसता (अमधुरता) के लिए प्रयुक्त हुआ है।

(१) त्वं न

संस्कृतव्याख्या— अर्थगता अग्राम्यता प्रायेण माधुर्यं विवर्धयति। अत एवा-ग्राम्यतावबोधनाय तदपेक्षितां ग्राम्यतामुदाहरति- **कन्ये इति**। **कन्ये** हे बाले, **कामय-मानं** रतये समुत्कण्ठमानं **मां त्वं** बाला **कथं** किमर्थं **न कामयसे** नेच्छसे। **इति** एवं प्रकारेण **अयम्** एषः उक्तः **ग्राम्यः** अशिष्टः **अर्थात्मा** वस्तुस्वरूपं **वैरस्याय** रसघाताय अमाधुर्याय **प्रकल्पते** प्रयुज्यते। श्लोकेऽस्मिन् प्रयुक्तः कन्यापदः अल्पवयादुहितृकृते प्रसिद्धमिति प्रथममेवानुचितप्रयोगेण विरसतामावहति। अपरञ्च कामः खलु कामिज-नानां कामेच्छारूपेण व्यङ्ग्येन एव चमत्करोति, न तु स्वशब्देनाभिहितेन। स्वशब्दाभिधा-नस्तु लज्जास्पदत्वेन विरसतामुत्पादयति।

विमर्श—

(१) इस पद्य में ग्राम्यत्व दोष का उदाहरण दिया गया है।

(२) पद्य में प्रयुक्त कन्यापद कम अवस्था वाली पुत्री के अर्थ में प्रसिद्ध है। इस प्रकार युवती के अर्थ में प्रयोग अनुचित है। अतः प्रिया का कन्या पद से सम्बोधन ग्राम्यत्व (अशिष्ट) है।

(३) कामभाव सम्भोग की इच्छा का द्योतक है। वाच्यरूप में इसका अभिव्यक्त करना लज्जास्पद होता है। इसकी अभिव्यक्ति व्यङ्ग्य के रूप में होनी चाहिए। अभिधा द्वारा अभिव्यक्त कामभाव भी ग्रामत्व (अशिष्ट) होता है।

(४) इस पद्य में अभिधा द्वारा ही कामभाव का वर्णन हुआ है, अतः यह ग्रामत्व प्रयोग है इसीलिए इससे विरसता उत्पन्न होती है।

(अर्थग्राम्यत्वस्य निदर्शनम्)

कामं कन्दर्पचाण्डालो[1] मयि वामाक्षि निष्ठुरः[2]।

त्वयि निर्मत्सरो दिष्ट्येत्यग्राम्योऽर्थो रसावहः ॥६४॥

अन्वय— वामाक्षि, कामं कन्दर्पचाण्डालः मयि निष्ठुरः, दिष्ट्या त्वयि निर्मत्सरः इति अग्राम्यः अर्थः रसावहः।

शब्दार्थ— वामाक्षि = हे सुलोचने (सुन्दर नेत्रों वाली)। कामं = यद्यपि, भले ही। कन्दर्पचाण्डालः = क्रूर कामदेव, निर्दय कामदेव, नीच कामदेव। मयि = मेरे ऊपर, मेरे प्रति। निष्ठुरः = कठोर, निर्दय। दिष्ट्या = सौभाग्य से। त्वयि = तुम्हारे ऊपर, तुम्हारे प्रति। निर्मत्सरः = शत्रुतारहित, मित्रतायुक्त, अनुकूल, क्रोधविहीन, दयावान्। इति = इस प्रकार, यह। अग्राम्यः = ग्राम्यत्वदोष से रहित। अर्थः =

(१) निर्दयः

(२) कीर्तनम्

अर्थ, प्रतिपाद्यविषय। रसावहः = रस (माधुर्य) का वाहक (पोषक) अथवा माधुर्य का कारण है।

अनुवाद— "हे सुलोचने, भले ही क्रूर (नीच) कामदेव मेरे (सुरतेच्छुक के) प्रति कठोर (निर्दय) (हो गया है) (किन्तु) सौभाग्य से तुम्हारे प्रति शत्रुतारहित (दयावान्) है" इस प्रकार (अभिव्यक्त) यह अग्राम्य (शिष्ट) अर्थ रस (मांधुर्य) का वाहक (पोषक) है।

संस्कृतव्याख्या— ग्राम्यत्वदोषमुदाहृत्य तद्विरुद्धस्वभावायाः अग्राम्यतायाः निदर्शनं ददाति- **काममिति**। **वामाक्षि** हे सुलोचने **कामं** यद्यपि **कन्दर्पचाण्डालः** कन्दर्पः कामदेवः चासौ चाण्डालः **निर्दयः** निर्दयकामदेवः इत्यर्थः, **मयि** सुरतमभिलषमाणे **निष्ठुरः** अतिक्रोधेन नितान्त कुपितः जातः परञ्च **त्वयि** मम प्रियतमायां **निर्मत्सरः** क्रोधरहितः दयावान् जातः इत्यर्थः इति एतादृशः **अयं** एषः **अग्राम्यः** ग्राम्यदोषरहितः **अर्थः** विषयप्रतिपादनं **रसावहः** माधुर्यवाहकः भवतीति योजनीयम्। पूर्वश्लोके प्रतिपादितः अर्थोऽत्र व्यङ्ग्यरूपेण वर्णितः अत एव कथनमिदं ग्राम्यत्वरहितं विद्यते।

विशेष—

(१) अभिधा द्वारा रतिविषयक अर्थ-संयोजन ग्रामत्व दोष होता है। इसका उदाहरण इससे पूर्व वाले श्लोक में दिया जा चुका है। अश्लील शब्दों के प्रयोग से रहित तथा शिष्ट पदों के प्रयोग से व्यञ्जित अर्थ ग्राम्यत्व दोष से रहित होता है। ग्राम्यत्व दोष से रहित अर्थ का उदाहरण इस पद्य में दिया गया है।

(२) 'कामदेव मुझ पर कठोर हो गया है' से यह व्यञ्जित हो रहा कि नायक अत्यन्त कामातुर और सुरत के लिए तत्पर है। 'तुम्हारे प्रति कामदेव क्रोधरहित है' से यह भी व्यञ्जित हो रहा है कि नायिका कामातुर नहीं है, अतः सुरत के लिए तैयार नहीं है।

(३) इस प्रकार इस अर्थ की व्यञ्जना इस वाक्य से हो जा रही है। इसमें अश्लील शब्दों का प्रयोग न होने से यह कथन ग्राम्यत्व-दोष से रहित है। अतः यह कथन मधुरता का पोषक है।

(शब्दग्राम्यताविवेचनम्)

शब्देऽपि ग्राम्यतास्त्येव सा सभ्येतरकीर्तनात्।
यथा यकारादिपदं रत्युत्सवनिरूपणे॥६५॥

अन्वय— सभ्येतरकीर्तनात् सा ग्राम्यता शब्दे अपि अस्ति एव। यथा रत्युत्सवनिरूपणे यकारादि पदम् (भवति)।

शब्दार्थ— सभ्येतरकीर्तनात् = सभ्य (शिष्ट) से अन्य (असभ्य, अश्लील) (शब्द के) कथन के कारण। सा = वह। ग्राम्यता = ग्राम्यत्व-दोष। शब्दे अपि = शब्द में भी। अस्ति एव = निश्चित रूप से होता है। यथा = जैसे। रत्युत्सवनिरूपणे = सुरत-क्रीडा के वर्णन (के प्रसङ्ग) में। यकारादि = यकार है आदि (प्रारम्भ में जिनके ऐसे, यकार से प्रारम्भ होने वाले। पदं = पद।

अनुवाद— सभ्य (शिष्ट) से अन्य (असभ्य = अश्लील) (शब्द) के कथन के कारण वह ग्राम्यत्व-दोष शब्द में भी निश्चित रूप से होता है। जैसे- सुरत-क्रीडा के वर्णन (के प्रसङ्ग) में यकार से आरम्भ होने वाले (यभ, याभ, यभन इत्यादि) पद (असभ्य = अश्लील होते हैं)।

संस्कृतव्याख्या— माधुर्यबाधकं ग्राम्यतादोषं निरूप्यात्र शब्दगतां ग्राम्यतां विवेचयति- **शब्देऽपीति। सभ्येतरकीर्तनात्** सभ्येतरस्य सभ्यभिन्नस्य असभ्यश्च कीर्तनात् कथनात् **सा** पूर्वोक्ता **ग्राम्यता** ग्राम्यत्वदोषः **शब्दे अपि** पदेऽपि **अस्ति एव** निश्चितरूपेण भवति। **यथा रत्युत्सवनिरूपणे** सुरतक्रीडावर्णनप्रसङ्गे **यकारादि** यकारः आदौ यस्य तादृशः यभयाभयभनादिकं **पदं** शब्दः ग्राम्यतादोषयुक्तं भवति। यभ मैथुने यकारादि धातुः तेन निष्पन्नं यभ-याभ-यभन इत्यादिकं पदं ग्राम्यत्वं विद्यते।

विशेष—

(१) इससे पूर्व माधुर्य में बाधक अर्थगत ग्राम्यता दोष का निरूपण करके यहाँ शब्दगत ग्राम्यत्व का निरूपण हुआ है।

(२) अश्लील शब्दों का प्रयोग शब्दगत ग्राम्यता कहलाता है। रतिक्रीडा के वर्णन के प्रसङ्ग में मैथुन अर्थ में प्रयुक्त यकार से प्रारम्भ होने वाली यभ से निष्पन्न यभ, याभ, यभन इत्यादि शब्दों का प्रयोग अश्लील है, अतः इसके प्रयोग से पद्य में अश्लीलता के कारण ग्राम्यत्व-दोष होता है। यह दोष प्रयुक्तपद में होने के कारण पदगत ग्राम्यत्व-दोष है। इसी प्रकार सुरत, निधुवन इत्यादि पद भी ग्राम्य हैं।

पदसन्धानवृत्त्या वा वाक्यार्थत्वेन वा पुनः।
दुष्प्रतीतिकरं ग्राम्यं यथा या भवतः प्रिया।।६६।।

अन्वय— पदसन्धानवृत्त्या वा पुनः वाक्यार्थत्वेन वा दुष्प्रतीतिकरं ग्राम्यं (भवति) यथा- या भवतः प्रिया।

शब्दार्थ— पदसन्धानवृत्त्या = पदों की सन्धि होने के कारण। पुनः = फिर। वाक्यर्थत्वेन वा = अथवा वाक्य के अर्थ के कारण। दुष्प्रतीतिकरं = अशिष्ट अर्थ

की प्रतीति कराने वाला। ग्राम्यं = ग्राम्यदोष-युक्त (होता है)। यथा- जैसे। या भवतः प्रिया = जो आप की प्रियतमा (है), अथवा याभवतः प्रिया = निरन्तर सुरत में रत रहने वाले की प्रिया है।

अनुवाद— पदों की सन्धि के कारण अथवा वाक्य के अर्थ के कारण अशिष्ट अर्थ की प्रतीति कराने वाला (वाक्य) ग्रामत्वदोष से युक्त (होता है)। जैसे- 'या भवतः प्रिया' अर्थात् जो आपकी प्रिया है (अथवा पदसन्धान होने पर) 'याभवतः प्रिया' अर्थात् निरन्तर सुरत में रत रहने वाले की प्रिया है।

संस्कृतव्याख्या— ग्राम्यतादोषः पदविशेषनिष्ठः एव न प्रत्युत पदसान्निध्येन अर्थविशेषेणापि प्रतिभाषितं भवति इत्यत्र विवेचयति- **पदसन्धानेति। पदसन्धानवृत्त्या** पदानां शब्दानां सन्धानेन सन्धिना वृत्त्या सत्तया पुनः **वाक्यार्थत्वेन वा** वाक्यार्थविशेषेण वा **दुष्प्रतीतिकरं** दुष्टार्थप्रतीतिजनकं वाक्यं **ग्राम्यं** ग्राम्यदोषयुक्तं भवति। यथा- **या भवतःप्रिया** या ते प्रियतमास्तीति शिष्टोऽर्थः परञ्च पदसन्धाने जाते याभवतः प्रिया निरन्तरसम्भोगरतस्य प्रिया सुरतदानेन प्रीणयित्री इति अशिष्टार्थोऽपि प्रतिभासते। अतोऽत्र पदसन्धानस्थित्यां ग्राम्यत्वम्।

विशेष—

(१) पदगत ग्राम्यत्व दोष का प्रतिपादन कर दिया गया है। वह पदगत ग्राम्यत्व केवल पदविशेष में ही नहीं होता प्रत्युत दो पदों के सन्धान की स्थिति में भी होता है। जैसे- 'या भवतः प्रिया' जो आपकी प्रियतमा है— यह अग्राम्य (शिष्ट) अर्थ है किन्तु दो पदों या और भवतः के सन्धान की स्थिति में याभवतः पद की प्रतीति होती है। इस प्रकार 'याभवतः प्रिया' अर्थात् निरन्तर सम्भोग में रत रहने वाले की प्रियतमा है- इस अशिष्ट अर्थ की प्रतीति होती है।

(२) 'याभवतः प्रिया' यह पदसन्धान ग्राम्यता दोष का उदाहरण इस पद्य का एक खण्ड है: यह पद्य सरस्वतीकण्ठाभरणालङ्कार १ का उदाहरण संख्या १७ है—

विद्यामभ्यसतो रात्रावेति या भवतः प्रिया।
वनितागुह्यकेशानां कथं ते पेलबन्धनम्॥

(३) वाक्यार्थविशेष में भी ग्राम्यत्व होता है जिसका उदाहरण नीचे वाले पद्य में दिया गया है।

खरं प्रहृत्य विश्रान्तः पुरुषो वीर्यवानिति।
एवमादि न शंसन्ति मार्गयोरुभयोरपि॥६७॥

अन्वय— खरं प्रहृत्य वीर्यवान् पुरुषः विश्रान्तः (अथवा वीर्यवान् पुरुषः खरं

प्रहत्य विश्रान्तः) इति एवमादि उभयोः अपि मार्गयोः न शंसन्ति।

शब्दार्थ— खरं = खर (नामक राक्षस) को। प्रहत्य = मारकर। वीर्यवान् = वीरभाव वाले। पुरुषः = पुरुष (राम) ने। विश्रान्तः = विश्राम किया। (अथवा वीर्यवान् = वीर्य (शुक्र) वाले। पुरुषः = पुरुष ने। खरं = गाढ़, तेज। प्रहत्य = मदनध्वज द्वारा मानमन्दिर पर प्रहार करके। विश्रान्तः = ठंडा पड़ गया है।) एवमादि = इस प्रकार वाले (अशिष्ट अर्थ के द्योतक)। उभयोः अपि = दोनों (वैदर्भ और गौडीय) भी। मार्गयोः = मार्गों में। न शसन्ति = मान्यता नहीं पाते, स्वीकृत नहीं होते।

अनुवाद— (शिष्ट अर्थ-) खर (नामक राक्षस) को मारकर वीरभाव वाले पुरुष (श्रीराम) ने विश्राम किया। (अशिष्ट अर्थ-) वीर्य शुक्र वाला पुरुष (सुरतक्रिया में लिङ्ग से योनि पर) अत्यधिक प्रहार करके (निर्वीर्य होकर) ठंडा पड़ गया है, इस प्रकार वाले (अशिष्ट अर्थ के द्योतक) (ग्रामत्व), (वैदर्भ और गौडीय)- इन दोनों मार्गों में प्रशंसित नहीं माना जाता है (स्वीकार नहीं किया जाता है)।

संस्कृतव्याख्या— वाक्यार्थविशेषेण प्रतीयमानग्राम्यत्वं प्रतिपादयत्यत्र- **खर**मिति। **खरं** तन्नामकं राक्षसविशेषं **प्रहत्य** हत्वा **वीर्यवान्** पराक्रमशाली **पुरुषः** श्रीरामः **विश्रान्तः** विश्रमं प्राप्तः इति शिष्टार्थः। **वीर्यवान्** गाढशुक्रसम्पन्नः **पुरुषः** जनः खरं गाढं **प्रहत्य** मदनध्वजेन मानमन्दिरं ताडयित्वा **विश्रान्तः** निःसृतशुक्रः विश्रमं प्राप्तः इत्यसभ्यार्थोऽपि प्रतीयते। **एवमादि** ईदृशं ग्रामत्वदोषसम्पन्नं वाक्यम् **उभयोः अपि** वैदर्भगौडीययोः अपि **मार्गयोः** मार्गद्वये **न शंसन्ति** न स्वीक्रीयन्ते।

विशेष—

(१) श्लोक के पूर्वार्ध के दो अर्थ निकल सकते हैं– शिष्ट और अशिष्ट। खर नामक राक्षस को मारकर पराक्रमशाली पुरुष श्रीराम ने विश्राम किया– यह शिष्ट अर्थ है और दूसरा (रतिक्रीडा में) किसी गाढ़े शुक्र वाले व्यक्ति ने (अपने मदनध्वज द्वारा मानमन्दिर में) अत्यधिक प्रहार करके (निर्वीर्य होकर) विश्रान्त हो गया है (ठंडा पड़ गया है)– यह अशिष्ट अर्थ भी प्रतिभासित होता है। इस अशिष्ट अर्थ की प्रतीति होने के कारण यहाँ ग्राम्यत्व है।

(२) इस प्रकार वाले पूर्व में निर्दिष्ट गाम्यदोष वैदर्भ और गौडीय दोनों मार्गों में से किसी मार्ग के अनुयायियों के लिए अभिमत नहीं है अर्थात् इस ग्राम्य दोष को स्वीकार नहीं किया जाता।

भगिनीभगवत्यादि सर्वत्रैवानुमन्यते।
विभक्तमिति माधुर्यमुच्यते सुकुमारता ॥६८॥

अन्वय— भगिनी भगवत्यादि सर्वत्र एव अनुमन्यते इति विभक्तं माधुर्यम्। सुकुमारता उच्यते।

शब्दार्थ— भगिनी भगवत्यादि = भगिनी, भगवती इत्यादि (पद ग्राम्य होते हुए भी)। सर्वत्र = सभी जगह (सभी प्रकार के काव्यों में)। अनुमन्यते = समादरित हैं, स्वीकृत हैं। इति = इस प्रकार। विभक्तं = दो भागों में बँटी हुई, (शब्दगत और अर्थगत) भेदद्वय-सहित। माधुर्य = मधुरता। सुकुमारता = सुकुमारता (नामक गुण)। उच्यते = कही जा रही है; विवेचित की जा रही है।

अनुवाद— भगिनी भगवती इत्यादि (पद ग्राम्य होते हुए भी) सर्वत्र ही (सभी प्रकार के काव्यों) में स्वीकृत किये गये हैं। इस प्रकार (शब्दगत और अर्थगत- इन दो भागों में) विभक्त मधुरता (का विवेचन कर दिया गया)। (अब) सुकुमारता (नामक गुण) कही जा रही है।

संस्कृतव्याख्या— केचन दुष्टाभासकपदाः अपि स्वीकृता भवन्तीति प्रतिपादयत्यत्र-**भगिनीति**। **भगिनी भगवत्यादि** भगिनी भगवती इत्यादि पदसमूहः योन्यादिग्राम्यार्थप्रतिपादकेन भगादिपदेन घटितमपि **सर्वत्र एव** सर्वविधेषु काव्येषु एव **अनुमन्यते** समाद्रियते। **इति** एवं विधं **विभक्तं** शब्दगतम् अर्थगतञ्च विभागद्वयनिर्देशपूर्वकं **माधुर्यं** माधुर्यनामकगुणविशेषः सप्रपञ्चं विवेचितमिति शेषः। सम्प्रति क्रमात् **सुकुमारता** सौकुमार्यं नाम गुणः **उच्यते** विवेच्यते।

विशेष—

(१) भगिनी भगवती इत्यादि पद यद्यपि अशिष्टार्थबोधक योनिवाचक भग शब्द से बने है; फिर भी सभी प्रकार के काव्यों में लोकसम्मत होने के कारण स्वीकार किये गये हैं।

(२) मधुरता दो प्रकार की होती है- शब्दगत और अर्थगत। इन दोनों भेद वाली मधुरता का निरूपण किया जा चुका है। अब क्रमानुसार सुकुमारता का निरूपण किया जा रहा है।

(सुकुमारतागुणनिरूपणम्)

अनिष्ठुराक्षरप्रायं　सुकुमारमिहेष्यते।
बन्धशैथल्यदोषस्तु दर्शितः सर्वकोमले ।।६९।।

अन्वय— अनिष्ठुराक्षरप्रायं सुकुमारम् इष्यते, सर्वकोमले बन्धशैथिल्यादिदोषः तु दर्शितः।

शब्दार्थ— अनिष्ठुराक्षरप्रायं = अनिष्ठुर (कोमल) वर्णों की अधिकता वाला

वाक्य, अनिष्ठुर (कोमल) वर्णों की अधिकता है जिसमें ऐसा (वाक्य)) । इह = यहाँ । सुकुमारं = सुकुमारता गुण से युक्त । इष्यते = माना जाता है, कहा जाता है। सर्वकोमले = सभी कोमल वर्णों वाला (बन्ध) में । बन्धशैथिल्यादिदोषः = बन्धशिथिलता इत्यादि दोष तो । **दर्शितः** दिखलाये (बताए) जा चुके हैं ।

अनुवाद— कोमल वर्णों की अधिकता वाला वाक्य सुकुमारता गुण वाला माना (कहा) जाता है । केवल सभी कोमल वर्णों वाले बन्ध में बन्ध-शैथिल्य इत्यादि दोष तो पहले बताए जा चुके हैं ।

संस्कृतव्याख्या— पञ्चमं सुकुमारत्वगुणं प्रतिपादयत्यत्र- **अनिष्ठुरेति** । **अनिष्ठुराक्षरप्रायं** सुकुमारवर्णाधिक्यं यत्र तादृशं वाक्यम् **इह** अत्र **सुकुमारं** सुकुमारतागुणोपेतं **इष्यते** अभीष्टतया स्वीक्रीयते । **सर्वकोमले** केवलं सर्वैः कोमलैः वर्णैः युक्ते बन्धे **बन्धशैथिल्यादिदोषः दर्शितः** श्लेषगुणवर्णनप्रसङ्गे प्रतिपादितः । सुकुमारतयाभिमते काव्ये केवलं कोमलाः वर्णाः एव न प्रयोजनीयाः तत्र निष्ठुरवर्णप्रयोगोऽपि अपेक्षितः । परञ्च सुकुमारवर्णानामाधिक्यमभीष्टं वर्तते । निष्ठुरवर्णानामभावे काव्ये बन्धशैथिल्यं नाम दोषं जायते यस्य निरूपणं श्लेषगुणनिरूपणप्रसङ्गे प्रतिपादितं विद्यते । बन्धशैथिल्यादिदोषस्तु न स्वीकृतः ।

विशेष—

(१) स्पर्शवर्गों के प्रथम, तृतीय और पञ्चम स्पर्श तथा य र ल व- ये अन्तस्थ वर्ण अल्पप्राण या कोमल वर्ण कहलाते हैं । इनसे अन्य सभी वर्ण निष्ठुर (कठोर) वर्ण होते हैं ।

(२) सुकुमारता गुण वाली रचना में कोमल वर्णों की कठोर वर्णों की अपेक्षा अधिकता होती है । केवल कोमल वर्णों के प्रयोग वाली रचनाओं में बन्धशैथिल्य नामक दोष होता है । जैसे– 'मालतीमाला लोलालिकलिला अर्थात् मालती की माला चञ्चल भ्रमरों से व्याप्त है । यहाँ केवल कोमलवर्णों का प्रयोग होने के कारण बन्ध-शैथिल्य है ।

(३) 'मालतीदाम लङ्घितं भ्रमरैः' अर्थात् मालती माला भ्रमरों से परिव्याप्त है– इस वाक्य में कोमल वर्णों के प्रयोग के साथ-साथ कठोर वर्णों द, भ्र का भी प्रयोग हुआ है; किन्तु कोमल वर्णों की अधिकता होने के कारण यहाँ बन्धशैथिल्य नहीं है।

(सुकुमारतायाः निदर्शनम्)

मण्डलीकृत्य बर्हाणि कण्ठैर्मधुरगीतिभिः ।
कलापिनः प्रनृत्यन्ति काले जीमूतमालिनि ।।७०।।

अन्वय— जीमूतमालिनि काले कलापिनः बर्हाणि मण्डलीकृत्य मधुरगीतिभिः कण्ठैः प्रनृत्यन्ति ।

शब्दार्थ— जीमूतमालिनि = मेघमाला वाले । काले = समय में । कलापिनः = मयूर-समूह । बर्हाणि = पङ्खों को । मण्डलीकृत्य = मण्डलाकार फैलाकर । मधुर-गीतिभिः = मधुर गीत वाले । कण्ठैः = कण्ठों से । प्रनृत्यन्ति = नाच रहे हैं ।

अनुवाद— मेघमाला वाले समय (वर्षा-काल) में मयूरों का समूह (अपने) पङ्खों को मण्डलाकार फैलाकर मधुरगीत वाले (केका ध्वनि करने वाले) कण्ठों से (गाकर) नाच रहें हैं ।

संस्कृतव्याख्या— सुकुमारतायाः निदर्शनं प्रतिपादयत्यत्र- **मण्डलीकृत्येति** । **जीमूतमालिनि** मेघमालायुक्ते **काले** समये **कलापिनः** मयूराः **बर्हाणि** स्वकीयानि पिच्छानि **मण्डलीकृत्य** मण्डलाकारं विधाय **मधुरगीतिभिः** मधुरं शब्दायमानैः **कण्ठैः** कण्ठविवरैः गीयमानाः सन्तः **प्रनृत्यन्ति** प्रकृष्टेण नृत्यं कुर्वन्ति । पद्येऽस्मिन् कोमलवर्णानाम् बहुलतया प्रयोगेण सौकुमार्य विद्यते ।

विमर्श—

(१) इस पद्य में म, ण, ल, क, य इत्यादि कोमल वर्णो का प्रयोग अधिकता से हुआ है तथा बीच-बीच में ब, ह, ठ, ध इत्यादि कठोर वर्णों और ण्ठ, त्य इत्यादि संयुक्त अक्षरों का भी प्रयोग हुआ है जो संख्या में कोमल वर्णों की अपेक्षा कम हैं । अतः यहाँ सौकुमार्य (सुकुमारता) गुण है ।

इत्यनूर्जित एवार्थो नालङ्कारोऽपि तादृशः ।
सुकुमारतयैवैतदारोहति　सतां　मनः ।।७१।।

अन्वय— इति अर्थः अनूर्जितः एव, तादृशः अलङ्कारः अपि न (परञ्च) सुकु-मारतया एव एतत् सतां मनः आरोहति ।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार (इस पद्य में) । अर्थः = अर्थ, प्रतिपाद्यवस्तु । अनूर्जितः एव = निश्चित रूप से अदीप्त (अचमत्कृत) । तादृशाः = वैसा (चमत्कारपूर्ण) । अलङ्कारः = अलङ्कार भी । न = नहीं है । सुकुमारतया एव = सुकुमारता (सौकुमार्य) गुण के कारण ही । एतत् = यह (पद्य) । सतां = सज्जन लोगों के, सहृदय लोगों के । मनः = मन (हृदय) में । आरोहति = चढ़ता है, स्थान बना लेता है ।

अनुवाद— इस प्रकार (इस पूर्ववर्ती 'मण्डलीकृत्य' इत्यादि पद्य में) अर्थ (प्रतिपाद्यवस्तु) निश्चित रूप से अदीप्त (अचमत्कृत) है अर्थात् इसके अर्थ में कोई चमत्कार नहीं है और वैसा (चमत्कारपूर्ण) अलङ्कार भी नहीं है (किन्तु) सुकुमारता

(सौकुमार्य) गुण के कारण ही यह (पद्य) सहृदय लोगों के मन (हृदय) में स्थान बना लेता है अर्थात् सहृदय लोगों को भला लगता है।

संस्कृतव्याख्या— अर्थस्य अनौर्जित्ये अचमत्कृतेऽलङ्कारे सत्यपि केवलं सौकुमार्येण पद्यस्य सहृदयहृदयग्राहित्वं प्रतिपादयत्यत्र- **इत्यनूर्जितः इति**। **इति** एवं प्रकारकेऽस्मिन् 'मण्डलीकृत्य' पद्ये **अर्थः** प्रतिपाद्यवस्तु **अनूर्जितः एव** निश्चितरूपेण अचमत्कृतः विद्यते, अत्र तादृशः चमत्कारपूर्णः **अलङ्कारः अपि न** वर्तते परञ्च **सुकुमारतया एव** सौकुमार्यगुणेन एव **एतत्** पूर्वनिर्दिष्टं मण्डलीकृत्यादि पद्यं **सतां** सज्जनानां सहृदयानामित्यर्थः, **मनः** चित्तम् **आरोहति** स्थानं गृह्णाति। अत्र अर्थः चमत्कारविहीनः, समासोक्तिः स्वभावोक्तिश्चालङ्कारः नातिशयेन चमत्कारयुक्तः तथापि पद्यमिदं सुकुमारतागुणेनैव सहृदयैः स्वीक्रियते।

विशेष—

(१) आचार्य भरत ने सौकुमार्य को गुण माना है। कतिपय प्राचीन आचार्य और उनके अनुयायी उत्तरवर्ती आचार्य इसे गुण नहीं मानते। उनके अनुसार अर्थ चमत्कार न होने पर सुकुमारता से कोई लाभ नहीं होता।

(२) दण्डी ने आचार्यों के इस मत का खण्डन इस कारिका में किया है। उपर्युक्त 'मण्डलीकृत्य' इत्यादि पद्य में तो अर्थ-चमत्कार का अभाव है और उसमें समासोक्ति और स्वभावोक्ति अलङ्कार भी अतिस्फुरित नहीं हैं; किन्तु यह सुकुमारतायुक्त होने के कारण सहृदय लोगों के मन को मोह लेता है। अतः निश्चित रूप से सुकुमारता गुण है।

(३) इस प्रकार दण्डी ने अर्थ और अलङ्कार की अपेक्षा गुणों को काव्य में प्रधान अङ्ग माना है। उनके मत में गुणवैचित्र्य के अभाव में अर्थ और अलङ्कार काव्य के शोभाधायक तत्त्व नहीं हो सकते।

दीप्तमित्यपरैर्भूम्ना कृच्छ्रोद्यमपि बध्यते।
न्यक्षेण क्षपितः[१] पक्षः[२] क्षत्रियाणां क्षणादिति॥७२॥

अन्वय— अपरैः कृच्छ्रोद्यम् अपि दीप्तं भूम्ना बध्यते। (यथा-) न्यक्षेण क्षणात् क्षत्रियाणां पक्षः क्षपितः इति।

शब्दार्थ— अपरैः = (वैदर्भमार्ग से) अन्य (गौडीय मार्ग के अनुयायियों) के द्वारा। कृच्छ्रोद्यम् अपि = कठिनाई से उच्चार्यमाण (काव्य) भी। दीप्तं = दीप्त (चमत्कार युक्त) (मानकर)। भूम्ना = प्रचुरता से, बध्यते = बाँधा जाता है, बन्धित किया जाता है, प्रयोग में लाया जाता है, गुम्फित किया जाता है। न्यक्षेण = परशुराम के द्वारा

अथवा नेत्राविहीन (धृतराष्ट्र) के द्वारा। क्षणात् = क्षणभर में, थोड़े समय में, शीघ्र ही। क्षत्रियाणां = क्षत्रिय लोगों का। पक्षः = पक्ष, वर्ग, समूह। क्षपितः = विनष्ट कर दिया गया, मार दिया गया।

अनुवाद— (वैदर्भ मार्ग से) अन्य (गौडीय मार्ग के अनुयायियों) के द्वारा कठिनाई से उच्चार्यमाण (काव्य) भी चमत्कारयुक्त मानकर प्रचुरता से गुम्फित किया जाता है (प्रयोग में लाया जाता है)। जैसे– 'न्यक्षेण क्षपितः पक्षः क्षत्रियाणां क्षणात्' अर्थात् परशुराम अथवा नेत्रविहीन (धृतराष्ट्र) के द्वारा क्षणभर में (शीघ्रं ही) क्षत्रियों का समूह विनष्ट कर दिया गया (मार दिया गया)।

संस्कृतव्याख्या— परुषाक्षराधिक्यात् परुषबन्धमपि दीप्तिकारकं भवतीति गौडीयैः स्वीक्रीयते अत एव तन्मतं प्रतिपादयत्यत्र- **दीप्तमिति**। **अपरैः** वैदर्भमार्गात् अन्यैः गौडीयमार्गानुयायिभिः **कृत्च्छ्रोद्यमपि** परुषाक्षराधिक्येन दुरुच्चार्यमाणमपि काव्यं **दीप्तं** चमत्कारयुतमिति मत्वा **भूम्ना** बाहुल्येन **बध्यते** विरच्यते। यथा– **न्यक्षेण** परशुरामेण अथवा दृष्टि विहीनेन जन्मान्धेन धृतराष्ट्रेण वा **क्षणात्** अल्पकालेन **क्षत्रियाणां** राजन्यानां **पक्षः** समूहः **क्षपितः** विनाशितः। धृतराष्ट्रपक्षे दुर्मन्त्रेण महाभारत-युद्धे राजन्यानां समूहः विनाशं प्राप्तः। उदाहरणेऽस्मिन् अर्थः चमत्कारयुक्तः बन्धश्च परुषाक्षराणां न्यक्षत्राणां संयुक्ताक्षराणां च प्रयोगेण दुरुच्चार्यमाणः **विद्यते** अत एव गौडीयजनैः बन्धोऽयं समाद्रियते। वैदर्भास्तु सुकुमारबन्धप्रियाः भवन्ति अतः एतादृशं बन्धं न स्वीक्रीयन्ते।

विशेष—

(१) गौडीयमार्ग के अनुयायी लोग दीप्तिमान् अर्थ वाले परुष-बन्ध को प्रचुरता से स्वीकार करते हैं। प्रस्तुत उदाहरण– 'न्यक्षेण क्षपितः पक्षः क्षत्रियाणां क्षाणात्' (अर्थात् परशुराम अथवा दृष्टिविहीन धृतराष्ट्र) ने क्षणभर में सभी राजा समूहों का विनाश कर दिया) में संयुक्ताक्षर न्य, क्ष, त्र, परुषाक्षर का प्रयोग हुआ है, अतः उच्चारण में कठिनाई होने के कारण यहाँ बन्धपरुष हो गया है तथा इसका अर्थ दीप्तिमान है, अतः यह बन्ध गौडीयानुयायियों को प्रिय लगता है।

(२) इसके विपरीत वैदर्भमार्गानुयायी सुकुमार ब्रन्ध को पसन्द करते हैं। अतः वे इस प्रकार के बन्ध को स्वीकार नहीं करते हैं।

(अर्थव्यक्तिनिरूपणम्)

अर्थव्यक्तिरनेयत्वमर्थस्य हरिणोद्धृता।
भूः खुरक्षुण्णनागासृग्लोहितादुदधेरिति ।।७३।।

अन्वय— अर्थस्य अनेयत्वम् अर्थव्यक्तिः । (यथा-) हरिणा खुरक्षुण्णनागासृग्लोहितात् उदधेः भूः उद्धृता इति ।

शब्दार्थ— अर्थस्य = अर्थ की। अनेयत्वं = अनेयता, अध्याहाररहित अभिव्यक्ति। अर्थव्यक्तिः = अर्थव्यक्ति (अर्थ का व्यक्त होना) । हरिणा = (वराहरूपधारी) विष्णु के द्वारा। खुरक्षुण्णनागासृग्लोहितात् = खुरों से कुचले गये (दलित) नागों (रसातल में रहने वाले सर्पों) के रक्त से रञ्जित (अत एव) लाल । उदधेः = समुद्र से । भूः = पृथ्वी । उद्धृता = बाहर निकाली गयी, ऊपर लायी गयी ।

अनुवाद— अर्थ की अनेयता (अध्याहाररहित अभिव्यक्ति) अर्थव्यक्ति (अर्थ का व्यक्त होना) नामक गुण (कहलाता है) । जैसे- (वराहरूपधारी) विष्णु के द्वारा खुरों से कुचले गये (दलित) (रसातल में रहने वाले) सर्पों के रक्त से रञ्जित (अत एव) लाल समुद्र से (प्रलयकाल में) पृथ्वी ऊपर लायी गयी ।

संस्कृतव्याख्या— षष्ठ गुणं अर्थव्यक्तिं प्रतिपादयत्यत्र- **अर्थव्यक्तिरिति** । **अर्थस्य** प्रतिपाद्यवस्तुनः **अनेयत्वम्** अध्याहारं विनैव अर्थाभिव्यक्तिः **अर्थव्यक्ति** इत्याख्यः गुणः कथ्यते इति शेषः । यथा- **हरिणा** वराहरूपधारिणा विष्णुना **खुरक्षुण्णनागासृग्लोहितात्** खुरैः शफैः क्षुण्णानां दलितानां नागानां रसातलवासिनां सर्पाणां असृजा रक्तेन लोहितात् रक्तवर्णात् **उदधेः** सागरात् **भूः** पृथ्वी **उद्धृता** ऊर्ध्वम् आनीता । उदाहरणेऽस्मिन् समुद्रपयोरञ्जनकारणीभूतो नागासृक्सम्पर्कः पृथगुक्तिं विनैव शब्दोपात्तः इति न तस्य अध्याहारत्वं नेयत्वदोषराहित्यात् च अर्थस्य अर्थव्यक्तिर्नाम गुणः ।

विशेष—

(१) इस कारिका में अर्थव्यक्ति नामक गुण का सोदाहरण नकारात्मक निरूपण किया गया है ।

(२) अन्य पद के अध्याहार के विना ही अर्थ का अभिव्यक्त हो जाना अर्थव्यक्ति कहलाता है । इस 'हरिणोद्धृता' इत्यादि उदाहरण में सागर के जल के लोहित होने का हेतु वराह के खुरों से कुचले गये सर्पों के रक्त का मिश्रित होना, शब्द से ही अभिव्यक्त हो जाने के कारण यहाँ उसके लिए किसी अन्य शब्द का अध्याहार नहीं करना पड़ता है । अतः यह अर्थव्यक्ति का उदाहरण है ।

(३) उदाहरण में पौराणिक आख्यान का वर्णन हुआ है । प्रलयकाल में नागों ने पृथ्वी को समुद्र के अन्दर छिपा दिया था । विष्णु भगवान् ने वराह का रूप धारण करके पृथ्वी को समुद्र से बाहर निकाला था । उस समय विष्णु द्वारा नागों को कुचल देने के कारण समुद्र का जल रक्तरञ्जित होने के कारण लाल हो गया है ।

(४) यद्यपि प्रसादगुण और अर्थव्यक्ति दोनों का निकट सम्बन्ध है; क्योंकि दोनों गुण

प्रतीतिसुभगत्व के जनक हैं तथापि दोनों गुणों में भेद है। प्रसाद गुण में प्रसिद्ध अर्थ वाले शब्दों के संयोजन होने के कारण प्रतीतिसुगमता होती है; किन्तु अर्थव्यक्ति में अन्य पद के अध्याहार के विना ही अर्थ की पूर्णतया अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रतीतिसुगमता होती है।

महीमहावराहेण लोहितादुद्धृतोदधेः।
इतीयत्येव निर्दिष्टे नेयत्वमुरगासृजः ।।७४।।

अन्वय— महावराहेण लोहितात् उदधेः मही उद्धृता इति इयति एव निर्दिष्टे 'उरगासृजः' नेयत्वं (भवति)।

शब्दार्थ— महावराहेण = महावराह (रूप धारण करने वाले विष्णु) के द्वारा। लोहितात् = रक्त-रञ्जित, रक्त से लाल वर्ण वाले। उदधेः = समुद्र (में) से। मही = पृथ्वी। उद्धृता = ऊपर लायी गयी, बाहर निकाली गयी। इति = इस प्रकार। इयति एव = इतना ही। निर्दिष्टे = निर्दिष्ट करने पर, कहने पर। उरगासृजः = सर्पों के रक्त का। नेयत्वं = नेयता (उन्नयन, अध्याहार) होता है।

अनुवाद— "महावराह (रूप धारण करने वाले विष्णु) के द्वारा रक्तरञ्जित समुद्र से (प्रलयकाल में) पृथ्वी ऊपर लायी गयी (बाहर निकाली गयी)" इस प्रकार इतना ही निर्दिष्ट करने पर (कहने पर) (समुद्र को लाल करने वाले) 'सर्पों के रक्त' का उन्नयन (अध्याहार) करना पड़ता है।

संस्कृतव्याख्या— अर्थव्यक्तिगुणप्रसङ्गे अनेयार्थत्वं निर्दिष्टम्। अनेयार्थत्वमवबोधनाय नेयार्थत्वस्य ज्ञानमपेक्षितम् अत एवात्र नेयार्थत्वं सोदाहरणं प्रपञ्चयति- **महेति**। **महावराहेण** महावराहरूपधारिण विष्णुना **लोहितात्** रक्तरञ्जितात् **उदधेः** सागरात्, **मही** पृथ्वी **उद्धृता** प्रलयकाले उपरि निःसारिता। **इति** एवं प्रकारेण **इयति एव** एतावत्येव **निर्दिष्टे** प्रोक्ते सति **उरगासृजः** (सागररक्तरञ्जितस्य कारणस्य) उरगाणां सर्पाणाम् असृजः शोणितस्य **नेयत्वम्** अध्याहारत्वं भवतीति शेषः। समुद्रस्य रक्तवर्णत्वकारणं स्पष्टं भवितव्यम् तत्कारणं यदि शब्देनाभिधीयमानं भवति तत्तत्र अनेयत्वं अर्थात् अर्थव्यक्तिः भवति। तदभावे तु तत्कारणमवबोधानाय अन्यस्य पदस्याध्याहारं क्रियते तदा अर्थस्य स्पष्टीकरणं भवितुमर्हति। उदाहरणेऽस्मिन् समुद्ररक्तवर्णत्वस्य कारणं नास्ति। अत्र तत्कारणमवबोधनाय अन्यस्य पदस्य उरगासृजः (सर्परक्तस्य) अध्याहारं भवति अत एवात्र नेयार्थत्वम् विद्यते।

विशेष—

(१) अर्थव्यक्ति गुण के निरूपण के प्रसङ्ग में अनेयार्थता का निर्देश हुआ है। अने-

यर्थता के ज्ञान के लिए नेयार्थता को समझ लेना आवश्यक है, इसीलिए इस कारिका में नेयार्थता का सोदाहरण प्रतिपादन किया गया है।

(२) अनेयार्थता नेयार्थता का अभाव है। अनेयार्थता में किसी बन्ध के सम्पूर्ण अर्थ को जानने के लिए उसमें प्रयुक्त पदों के अतिरिक्त किसी अन्य पद का अध्याहार नहीं करना पड़ता किन्तु नेयार्थता में किसी बन्ध का सम्पूर्ण अर्थ करने के लिए बन्ध में प्रयुक्त पदों के अतिरिक्त अन्य पद का भी अध्याहार करना पड़ता है। जैसे प्रस्तुत उदाहरण 'मही महावराहेण लोहितादुद्धृतोदधेः' अर्थात् महावराहरूप धारण करने वाले विष्णु के द्वारा रक्तरञ्जित समुद्र से पृथ्वी बाहर निकाली गयी- में समुद्र के रक्तवर्ण होने का कारण कुचले गये सर्पों का रक्त है। इस बन्ध के सम्पूर्ण अर्थ के निर्धारण के लिए बन्ध में प्रयुक्त पदों के अतिरिक्त अन्य पद 'उरगासृजः' अर्थात् सर्पों के रक्त का अध्याहार करना पड़ता है।

नेदृशं बहुमन्यन्ते मार्गयोरुभयोरपि।
न हि प्रतीतिः सुभगा[१] शब्दन्यायविलङ्घिनी ।।७५।।

अन्वय— ईदृशम् उभयोः अपि मार्गयोः न बहुमन्यन्ते हि शब्दन्यायविलङ्घिनीं प्रतीतिः सुभगा न (भवति)।

शब्दार्थ— ईदृशम् = इस प्रकार (नेयार्थत्व)। उभयोः अपि = (वैदर्भ और गौडीय) दोनों ही। मार्गयोः = मार्गों (के अनुयायियों) में। न बहुमन्यन्ते = समादरित नहीं होता, मान्य नहीं होता, स्वीकृत नहीं होता। हि = क्योंकि। शब्दन्यायविलङ्घिनी = शब्दनियम (शब्दन्याय) का अतिक्रमण (उलङ्घन) करने वाली। प्रतीतिः = अर्थावबोध, अर्थ-प्रतीति। सुभगा न = सुलभ नहीं होती, सुन्दर नहीं होती।

अनुवाद— इस प्रकार (की नेयार्थता) (वैदर्भ और गौडीय) दोनों ही मार्गों (के अनुयायियों) में स्वीकृत नहीं होती; क्योंकि शब्दनियम (शब्दन्याय) का अतिक्रमण करने वाली अर्थप्रतीति सुन्दर नहीं होती।

संस्कृतव्याख्या— वैदर्भगौडीययोः द्वयोः मार्गयोः नेयार्थत्वस्य अस्वीकार्यत्वं प्रतिपादयत्यत्र- **नेदृशमिति**। **ईदृशं** पूर्वोक्तविधं नेयार्थत्वम् **उभयोः** अपि वदर्भगौडीययोः द्वयोः अपि मार्गयोः अनुयायिभिः **न बहुमन्यन्ते** न स्वीक्रीयन्ते **हि** यतो हि **शब्दन्याय-विलङ्घिनी** शब्दन्यायस्य शाब्दबोधनियमस्य विलङ्घिनी अतिक्रमणी **प्रतीति** नेयार्थप्रतीतिः **सुभगा न** सुगमा रमणीया वा न भवतीति शेषः। शब्दार्थबोधकसामान्यनियमाननुकूलत्वेन अर्थस्य सुखावबोधता न विद्यते अत एव मार्गद्वयेऽपि न स्वीकृतं भवतीत्यर्थः।

(१) सुलभा

विशेष—

(१) शब्दसामर्थ्यनियम का उलङ्घन करने वाली अर्थप्रतीति रमणीय नहीं होती है— जिस बन्ध में शब्दबोध के सिद्धान्तों की अवहेलना की जाती है, वह हृदयग्राही नहीं होता। इसलिए नेयार्थ वाक्य का समादर न तो वैदर्भ मार्ग वाले करते हैं और न ही गौडीय सम्प्रदाय वाले ही।

(औदार्यगुणनिरूपणम्)

उत्कर्षवान् गुणः कश्चिद्यस्मिन्नुक्ते[१] प्रतीयते।
तदुदाराह्वयं तेन सनाथा काव्यपद्धतिः[२] ।।७६।।

अन्वय— यस्मिन् उक्ते कश्चित् उत्कर्षवान् गुणः प्रतीयते तत् उदाराह्वयम्। तेन काव्यपद्धतिः सनाथा (जायते)।

शब्दार्थ— यस्मिन् = जिस (वाक्य) के। उक्ते = कहने पर (उच्चारण करने पर। कश्चित् = कोई (महनीयतासूचक)। उत्कर्षवान् = उत्कर्ष वाला, गौरवपूर्ण। गुणः = धर्मविशेष। प्रतीयते = प्रतीत होता है, अभिव्यक्त होता है। तत् = वह (वाक्य)। उदाराह्वयं = उदारता नामक (गुण) (कहलाता है)। तेन = उस (उदारता गुण) से। काव्यपद्धतिः = काव्यरचनविधा। सनाथा = गौरवान्वित, चमत्कृत।

अनुवाद— जिस (वाक्य) के कहने पर (उच्चारण करने पर) कोई (महनीयता-सूचक) उत्कर्ष वाला (गौरवपूर्ण) गुण (धर्मविशेष) प्रतीत (अभिव्यक्त) होता है तो वह उदारता नामक (गुण कहलाता है)। उस (उदारता गुण) से काव्य-रचना विधा गौरवान्वित (चमत्कृत) (होती है)।

संस्कृतव्याख्या— सप्तमं औदार्यगुणं प्रतिपादयत्यत्र- **उत्कर्षवानिति। यस्मिन्** वाक्ये **उक्ते** कथिते उच्चारिते वा सति **कश्चित्** उत्कर्षवान् महनीयतासूचकगुणः **प्रतीयते** अभिव्यज्यते **तत्** वाक्यम् **उदाराह्वयं** उदारताख्यं गुणः भवतीति शेषः। **तेन** गुणेन **काव्यपद्धतिः** काव्यरचनाविधा **सनाथा** गौरवान्विता चमत्कृता वा भवति। येन वाक्यप्रयोगेण प्रतिपाद्यविषयस्य त्यागादिलक्षणस्य गौरवाधिक्यं वा भवति। येन वाक्यप्रयोगेण प्रतिपाद्यविषयस्य त्यागादिलक्षणस्य गौरवाधिक्यं प्रतीयते तदौदार्यगुणः अभिधीयते तेनौदार्यगुणेन काव्यरचनाविधा समत्कृतिं प्राप्यते।

विशेष—

(१) इस कारिका में औदार्य गुण का विवेचन किया गया है। जिस वाक्य के उच्चारण

---

(१) उक्ते यस्मिन्
(२) सर्वपद्धतिः

से महनीयता सूचक गौरवपूर्ण धर्मविशेष अभिव्यक्त होता है, वह गुण उदारता नामक गुण कहा जाता है।

(२) औदार्य नामक गुण से काव्यबन्ध में चमत्कार आ जाता है।

(३) औदार्य गुण अभिव्यक्ति-प्रकार से सम्बन्धित न होकर वर्ण्यवस्तु की महनीयता की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित है। उदात्त गौरवपूर्ण मानवीय गुणों का कथन इस गुण की सीमा में आता है।

(औदार्यस्य निदर्शनम्)

अर्थिनां कृपणा दृष्टिस्त्वन्मुखे पतिता सकृत्।
तदवस्था पुनर्देव नान्यस्य मुखमीक्षते ।।७७।।

अन्वय— देव, अर्थिनां कृपणा दृष्टिः सकृत् त्वन्मुखे पतिता पुनः तदवस्था अन्यस्य मुखं न ईक्षते।

शब्दार्थ— देव = हे महाराज ! हे राजन्। अर्थिनां = याचकों की। कृपणा = दीनतापूर्ण। दृष्टिः = दृष्टि। सकृत् = एक बार। त्वन्मुखे = तुम्हारे मुख पर। पतिता = गिरकर, गिरने के बाद। पुनः = फिर। अन्यस्य = (आप से) दूसरे (व्यक्ति) के। मुखं = मुख को। न ईक्षते = नहीं देखती है।

अनुवाद— हे राजन् ! याचकों की दीनतापूर्ण दृष्टि एक बार आपके मुख पर गिरकर पुनः (आप से) अन्य (दूसरे दाता) के मुख को नहीं देखती है (क्योंकि उनकी सभी इच्छाएँ आप पूरा कर देते हैं)।

संस्कृतव्याख्या— औदार्यगुणस्य निदर्शनं प्रतिपादयत्यत्र- **अर्थिनामिति**। **हे देव** हे राजन् **अर्थिनां** याचकानां **कृपणा** दीनतापूर्णा **दृष्टिः** नेत्रं **सकृत्** एकवारं **त्वन्मुखे** भवतः राज्ञः मुखे वदने **पतिता** प्रवृता सती **पुनः** तत्पश्चात् **तदवस्था** दीनावस्थां प्राप्ता **अन्यस्य** भवद्व्यतिरिक्तस्य कस्यापि राज्ञः **मुखम्** आननं **न ईक्षते** नावलोक्यते। त्वया पूरिताभिलाषा दीना याचका अन्यं दातारं न उपगच्छन्तीत्यर्थः। पद्येऽस्मिन् त्यागस्य दानोत्कर्षः अभिव्यज्यते। अनेनैवोत्कर्षवर्णनेनात्र औदार्यं नाम गुणः विद्यते।

विशेष—

(१) राजा के पास याचक एक बार याचना के लिए जाता है और याचना करता है। राजा उस याचक को इतना धन दान में दे देता है कि उसकी सभी अभिलाषाएँ पूरी हो जाती हैं। अतः उसे फिर अन्य राजा के पास याचना के लिए नहीं जाना पड़ता।

(२) इस उदाहरण में राजा के दान का उत्कर्ष वर्णित किया गया है इसलिए यहाँ औदार्य (उदारता) नामक गुण है। इस गुण से इस पद्य में चमत्कार आ गया है।

इति त्यागस्य वाक्येऽस्मिन्नुत्कर्षः साधु[१] लक्ष्यते ।
अनेनैव पथान्यच्च[२] समानन्यायमूह्यताम् ।।७८।।

अन्वय— इति अस्मिन् वाक्ये त्यागस्य उत्कर्षः साधु लक्ष्यते। अनेन एव पथा अन्यत् च समानन्यायम् ऊह्यताम्।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। अस्मिन् = इस। वाक्ये = वाक्य में। त्यागस्य = त्याग का। उत्कर्षः = उत्कर्ष, चमत्कार, महत्त्व। साधु = स्पष्टतया, स्पष्ट रूप से, सम्यक् प्रकार से। लक्ष्यते = प्रकट होता है, प्रदर्शित किया गया है। अनेन एव = इसी। पथा = मार्ग से, विधि से। अन्यत् = और (दया, आहिंसा, शौर्य इत्यादि) अन्य। समानन्यायम् = समान नियम को, समान उदाहरण को। ऊह्यताम् = समझ लेना (जान लेना) चाहिए।

अनुवाद— इस प्रकार इस (पूर्वोक्त) वाक्य (उदाहरण) में त्याग का उत्कर्ष (चमत्कार) स्पष्ट रूप से (सम्यक् प्रकार से) प्रदर्शित किया गया है। इसी विधि से (दया, अहिंसा, शौर्य इत्यादि) अन्य समान नियम (उदाहरण) को समझ लेना (जान लेना) चाहिए।

संस्कृतव्याख्या— पूर्वलक्षणलक्षितम् औदार्यगुणं दृष्टान्तेन विशदयति- इतीति। **इति** एवं प्रकारेण **अस्मिन्** पूर्वोक्ते **वाक्ये** कथने उदाहरणे वा **त्यागस्य** दानस्य **उत्कर्षः** महत्त्वं **साधु** सम्यक् प्रकारेण स्पष्टया **लक्ष्यते** प्रतीयते। **अनेन एव** पूर्वोक्तेनैव **पथा** मार्गेण विधिना वा **अन्यत् च** अपरमपि **समानन्यायं** दयाहिंसाशौर्यदिगुणवर्णनात्मकं निदर्शनम् **ऊह्यताम्** अवबोध्यताम्।

विशेष—

(१) 'अर्थिनां कृपणा' इत्यादि पूर्ववर्ती उदाहरण में दान की उत्कृष्टता का वर्णन हुआ है जो उदारता गुण से समन्वित है। इसी प्रकार अन्य भी दया, अहिंसा शौर्य इत्यादि की उत्कृष्टता के वर्णन वाले अन्य उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिए। उन उदाहरणों में भी औदार्य गुण होता है।

(औदार्यविषयकमतान्तरम्)

श्लाघ्यैर्विशेषणैर्युक्तमुदारं कैश्चिदिष्यते ।
यथा लीलाम्बुजक्रीडासरोहेमाङ्गदादयः ।।७९।।

---

१. खलु
२. अन्यत्र

अन्वय— कैश्चित् श्लाघ्यैः विशेषणैः युक्तम् उदारम् इष्यते। यथा लीलाम्बुज-क्रीडासरोहेमाङ्गदादयः (इति)।

शब्दार्थ— कैश्चित् = कतिपय आचार्यों के अनुसार। श्लाघ्यैः = उत्कर्षयुक्त, चमत्कारपूर्ण, उत्कर्षाधायक। विशेषणैः = विशेषणों से, उपाधियों से। युक्त = सम्पन्न, (पद या वाक्य)। उदारं = उदारता गुण वाला। इष्यते = माना जाता है, स्वीकार किया जाता है। यथा = जैसे। लीलाम्बुजक्रीडासरोहेमाङ्गदादयः = लीलाम्बुज (खेलने के लिए हाथ में धारण किया गया कमल), कीड़ासर (खेलने का सरोवर) हेमाङ्गद (सुवर्ण से बना हुआ बाजूबन्द) इत्यादि।

अनुवाद— कतिपय आचार्यों के अनुसार उत्कर्षयुक्त (चमत्कारपूर्ण) विशेषणों (उपाधियों) से सम्पन्न (पद या वाक्य) उदारगुणयुक्त (रचना) स्वीकार की जाती है। (मानी जाती है)। जैसे- लीलाम्बुज (खेलने के लिए हाथ में धारण किया गया कमल), क्रीडासर (खेलने का सरोवर), हेमाङ्गद (सुवर्ण से बना हुआ बाजूबन्द) इत्यादि।

संस्कृतव्याख्या— औदार्यगुणविषये कतिपयानामाचार्याणां मतं निर्दिशत्यत्र-**श्लाघ्यैरिति। कैश्चित्** कतिपयैराचार्यैः **श्लाघ्यैः** उत्कर्षाधायकैः **विशेषणैः** उपाधिभिः **युक्तं** सम्पन्नं पदं वाक्यं वा **उदारम्** औदार्यगुणयुक्तं **इष्यते** स्वीक्रीयते। **यथा लीलाम्बुजक्रीडासरोहेमाङ्गदादयः** लीलाम्बुजं लीलार्थं हस्तगृहीतम् अम्बुजं कमलं क्रीडा-सरः क्रीडार्थं सरोवरं हेमाङ्गदं स्वर्णनिर्मितं अङ्गदम् आभूषणविशेषम्ः इत्यादयः पद-विशेषाः एतादृशा पदोपेता वाक्यविशेषाश्च उदारतागुणसमन्विता विद्यन्ते।

विशेष—

(१) दण्डी ने अपने अनुसार औदार्य गुण का निरूपण करके कतिपय अन्य आचार्यों के मत में निर्धारित उदारता गुण के लक्षण को प्रतिपादित किया है। उत्कर्षा-धायक विशेषणों वाले पद अथवा वाक्य से संयोजित रचना भी औदार्य गुण से सम्पन्न होती है।

(२) लीलाम्बुज लीला पद, कमल के आकार और उत्कृष्टता का सूचक है। क्रीडा-सर से सरोवर के कमल, उस पर मडराते हुए भ्रमर, सरोवर के घाट इत्यादि की युक्तता प्रदर्शित होती है। हेमाङ्गद स्वर्णनिर्मित अङ्गद से उसकी बहुमूल्यता, कान्ति इत्यादि का द्योतन होता है। ये उत्कर्ष वाचक विशेषण उदारता गुण वाले हैं।

(३) इन पदों के अतिरिक्त अन्य भी पद उत्कर्षाधायक औदार्य गुण वाले पद हैं। जैसे- मणिसोपान, मणिमेखला इत्यादि। ऐसे पद भी उदारता गुण से युक्त होते हैं। दण्डी ने कारिका में 'इत्यादि' पद के प्रयोग से ऐसे पदों की ओर सङ्केत किया है।

(ओजगुणनिरूपणम्)

ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम् ।
पद्येऽप्यदाक्षिण्यात्यानामिदमेकं परायणम् ।।८०।।

अन्वय— समासभूयस्त्वम् ओजः । एतत् गद्यस्य जीवितं (भवति) अदाक्षिण्यानां पद्ये अपि इदम् एकं परायणम् (अस्ति) ।

शब्दार्थ— समासभूयस्त्वम् = समासयुक्त (पदों) की बहुलता (अधिकता) वाला । **ओजः** = ओज गुण । एतत् = यह (ओज) । गद्यस्य = गद्य का । जीवितम् = जीवन, प्राण । अदाक्षिण्यानां = वैदर्भमार्ग से अन्य (अर्थात् गौडीय मार्ग वालों) का । पद्ये अपि = पद्य में भी । इदं = यह (ओजगुण) । एकः = अद्वितीय । परायणं = परमगति, आश्रय (है) ।

अनुवाद— समासयुक्त (पदों) की बहुलता (अधिकता) वाला (बन्ध) ओज गुण (कहलाता हैं) । (अर्थात् जिस रचना में सामासिक पदों की अधिकता होती है ऐसी रचना को ओज गुण सम्पन्न कहा जाता है) । (वैदर्भ मार्ग के अनुसार) यह (ओज गुण) गद्य (बन्ध) का जीवन (प्राण) है । वैदर्भ मार्ग से अन्य (अर्थात् गौडीयमार्ग के अनुयायियों) का पद्य में भी यह (ओज गुण) अद्वितीय आश्रय (शरण) है अर्थात् गौडीय मार्ग वाले पद्य में भी इस गुण के संयोजन को अनिवार्य मानते हैं ।

संस्कृतव्याख्या— कारिकायामस्यां ओजगुणस्य लक्षणं तत्प्रयोगक्षेत्रञ्च निर्दिशति- **ओजः इति। सामासभूयस्त्वम्** समासस्य समासयुक्तस्य पदस्य भूयस्त्वम् बाहुल्यं यत्र तत् समासभूयस्त्वं समासयुक्तपदबाहुल्यं बन्धः **ओजः** ओजगुणसम्पन्नः भवतीति-शेषः । वैदर्भमार्गानुसारं एतत् ओजः **गद्यस्य** गद्यकाव्यस्य **जीवितं** प्राणभूतम् अस्ति । **अदाक्षिण्यानां** अदाक्षिण्यानां वैदर्भमार्गव्यतिरिक्तानां गौडीयमार्गानुयायिनां कृते **पद्ये अपि** पद्यकाव्येऽपि **इदं** ओजः **एकम्** अद्वितीयं **परायणं** शरणं जायते । गौडीयमार्गानुयायिनः गद्ये पद्यकाव्ये चापि समासबाहुल्यस्य प्रयोगं अपेक्ष्यन्ते परं वैदर्भाः गद्यकाव्ये एव समासबाहुल्यस्य प्रयोगं स्वीक्रीयन्ते पद्ये तु उपेक्ष्यन्ते ।

विशेष—

(१) इस कारिका में ओज गुण का लक्षण और उसके प्रयोग क्षेत्र का निर्धारण किया गया है ।

(२) वह रचना जिसमें समासयुक्त पद की बहुलता होती है, वह ओजगुण से समन्वित होती है ।

(३) ओज गुण के प्रयोग क्षेत्र के विषय में आचार्यों के दो मत है- (क) केवल

गद्यकाव्य में ओज का प्रयोग तथा (ख) गद्य और पद्य दोनों काव्यों में ओज का प्रयोग। वैदर्भ मार्ग के अनुयायियों के अनुसार समास बहुलता गद्य काव्य में ही होनी चाहिए। उनके मत में पद्य में सामासिक पदों का अभाव होना चाहिए या बहुत छोटे-छोटे समास वाले पदों का संयोजन होना चाहिए, किन्तु गौडीय मार्ग के समर्थक गद्य और पद्य दोनों काव्यों में समास की बहुलता को अभीष्ट मानते हैं। ओज गुणविहीन दोनों प्रकार की रचनाओं को वे प्रशंसित नहीं मानते।

(ओजसः विविधत्वम्)

तद्गुरूणां लघूनां च बाहुल्याल्पत्वमिश्रणैः।
उच्चावचप्रकारं तद्[1] दृश्य[2]माख्यायिकादिषु ॥८१॥

अन्वय— तत् गुरूणां लघूनां बाहुल्याल्पत्वमिश्रणैः उच्चावचप्रकारं तद् आख्यायिकादिषु दृश्यते।

शब्दार्थ— तत् = वह (समासभूयस्त्व = ओजगुण)। गुरूणां = लम्बे, दीर्घाकार, बड़े। लघूनां = छोटे, लघ्वाकार, अल्पाकार। बाहुल्याल्पत्वमिश्रणैः = अधिकता, (बहुलता), विरलता और (दोनों का) मिश्रण (अर्थात् मध्यम) स्थिति के अनुसार। उच्चावचप्रकारं = अनेक प्रकार वाला, विविध रूप वाला (होता है)। तद् = आख्यायिकादिषु = आख्यायिका इत्यादि में। दृश्यं = देखने योग्य (दर्शनीय) होता है, देखा जाता है, दिखलायी पड़ता है।

अनुवाद— वह (समासभूयस्त्व = ओजोगुण) दीर्घाकार (लम्बे), अल्पाकार (छोटे) (समासों) की बहुलता (अधिकता), विरलता और (दोनों के) मिश्रण (अर्थात् मध्यम) स्थिति के अनुसार विविध प्रकार वाला (होता है)। (उसका) (अनेक प्रकार) आख्यायिका इत्यादि (गद्यकाव्य के भेदों में दिखलायी पड़ता है।

संस्कृतव्याख्या— समासभूयस्त्वरूपस्य ओजगुणस्य विविधप्रकारत्वं निर्दिशत्यत्र- तद्गुरूणामिति। **तत्** समासभूयस्त्वरूपम् ओजोगुणं **गुरूणां** दीर्घाकाराणां **लघूनां** ह्रस्वाकाराणां, **बाहुल्याल्पत्वमिश्रणैः** बाहुल्येन आधिक्येन अल्पत्वेन विरलतया मिश्रेण मध्यमस्थित्या च **उच्चावचप्रकारं** नानाविधं **तद्** नानाविधत्वं **आख्यायिकादिषु** आख्यायिकादिगद्यकाव्यभेदेषु **दृश्यं** दर्शनीयं भवतीति शेषः। एवमोजगुणं षड्विधं भवति गुरुसमासाणां लघुसमासानां योगेन द्विधा पुनः प्रत्येकं आधिक्याल्पत्वमिश्रणभेदेन

---

(१) सद्

(२) दृष्टं

प्रत्येकं त्रिधा भवति । एतेषां षड्विधानां ओजोगुणानां निदर्शनं आख्यायिकादिषु गद्यकाव्य-भेदेषु दृश्यते ।

विशेष—

(१) इस कारिका में ओजगुण के विविध प्रकारों को बतलाया गया है। दण्डी के अनुसार ओजगुण विविध प्रकार के होते हैं; किन्तु मुख्य छः भेदों को उन्होंने अपने ग्रन्थ में प्रतिपादित किया है। वे हैं- (क) लम्बे समास वाले पदों की अधिकता, (ख) लम्बे समास वाले पदों की विरलता, (ग) लम्बे समास वाले पदों का सामान्य (माध्यम) प्रयोग, (घ) छोटे समासों की अधिकता, (ङ) छोटे समास वाले पदों की विरलता तथा (च) छोटे समास वाले पदों का सामान्य प्रयोग।

(२) जीवानन्द विद्यासागर इत्यादि विद्वान् गुरु और लघु पद का क्रमशः महाप्राण और अल्पप्राण वर्ण अर्थ करते हैं तथा रत्नश्रीज्ञान दीर्घ और ह्रस्व अक्षर अर्थ करते हैं। यहाँ अक्षर का कोई भी प्रसङ्ग नहीं है। अतः गुरु से लम्बे समास वाले पद तथा लघु से छोटे समास वाले पद का ग्रहण अधिक उचित प्रतीत होता है।

(गौडीयाभिमतौजोगुणस्य निदर्शनम्)

अस्तमस्तकपर्यस्तसमस्तार्कांशुसंस्तरा ।
पीनस्तनस्थिताताम्रवस्त्रेवाभाति वारुणी ।।८२।।
इति पद्येऽपि पौरस्त्या बध्नन्त्यौजस्विनीर्गिरः ।

अन्वय— अस्तमस्तकपर्यस्तसमस्तार्कांशुसंस्तरा वारुणी पीनस्तनस्थिताताम्र-वस्त्रा इव आभाति, इति पद्ये अपि पौरस्त्याः औजस्विनीः गिरः बध्नन्ति।

शब्दार्थ— अस्तमस्तकपर्यस्तसमस्तार्कांशुसंस्तरा = अस्ताचल के शिखर (मस्तक) पर फैली (बिखरी) हुई (पर्यस्त) सूर्य (अर्क) की सम्पूर्ण किरणों के द्वारा आच्छादित (संस्तर)। वारुणी = वरुण सम्बन्धी (पश्चिम) दिशा। पीनस्तनस्थिताताम्रवस्त्रा इव = विशाल स्तनों पर स्थित कुछ लोहित वस्त्र वाली (नायिका) के समान। आभाति = प्रतीत हो रही है, शोभायमान हो रही है। इति = इस प्रकार। पद्ये अपि = पद्य में भी। पौरस्त्याः = गौडीय मार्गानुयायी लोग (कवि)। ओजस्विनी = ओजगुण वाली, ओजगुण से समन्वित। गिरः = वाणी को, रचना को, बन्ध को। बध्नन्ति = बाँधते हैं, प्रयोग में लाते है, संयोजित करते हैं।

अनुवाद— 'अस्ताचल के शिखर पर फैली हुई (बिखरी हुई) सूर्य की सम्पूर्ण किरणों के द्वारा आच्छादित पश्चिमदिशा, विशाल स्तनों पर स्थित कुछ लोहित वस्त्र धारण करने वाली (नायिका) के समान शोभायमान हो रही है' इस प्रकार पद्य में भी

गौडीयमार्गानुयायी लोग (= कवि जन) ओज गुण से समन्वित रचना को संयोजित करते हैं (अर्थात् ओज गुण से युक्त पद्य-काव्य की रचना करते हैं)।

संस्कृतव्याख्या— गौडीयानामभिमतं ओजगुणस्य निदर्शनं ददात्यत्र-**अस्तमस्तक इति**। **अस्तमस्तकपर्यन्तसमस्तार्कांशुसंस्तरा** अस्तमस्तके अस्ताचलशिखरे पर्यन्ताः प्रसृताः ये समस्ताः सम्पूर्णाः अर्कस्य सायंकालिकस्य सूर्यस्य अंशवः किरणाः तैः संस्तरा आच्छादिता **वारुणी** पश्चिमा दिक् **पीनस्तनस्थिताताम्रवस्त्रा** इव पीने पुष्टे विशाले वा स्तने कुचप्रदेशे स्थितं विद्यमानम् आताम्रं ईषल्लोहितं वस्त्रं वासः यस्याः तादृशी नायिका इव **आभति** प्रतीयते। अत्र दीर्घसमासाधिक्यप्रयोगाद् ओजोगुणः। इति ईदृशं **पद्ये अपि** पद्यकाव्येऽपि **पौरस्त्याः** गौडीयमार्गानुयायिनः कवयः **ओजस्विनी** ओजोगुणसमान्विता गिरः वाचः **बध्नन्ति** संयोजयन्ति।

विशेष—

(१) लम्बे समास-युक्त इस पद्य-रचना को गौडीय लोग ही पसन्द करते हैं। वैदर्भ लोग ऐसे ओजपूर्ण समासभूयस्त्व पदविन्यास को गद्य काव्य में तो स्वीकार करते हैं; किन्तु पद्य काव्य में अभीष्ट नहीं मानते।

(वैदर्भाभिमतं ओजोगुणनिदर्शनम्)

अन्ये त्वनाकुलं[1] हृद्यमिच्छन्त्योजो गिरां यथा ।।८३।।
पयोधरतटोत्सङ्गलग्नसन्ध्यातपांशुका ।
कस्य कामातुरं चेतो वारुणी न करिष्यति ।।८४।।

अन्वय— अन्ये तु गिराम् अनाकुलं हृद्यम् ओजः इच्छन्ति। यथा- पयोधरतटोत्सङ्गलग्नसन्ध्यातपांशुका वारुणी कस्य चेतः कामातुरं न करिष्यति।

शब्दार्थ— अन्ये तु = (गौडीय मार्ग से) अन्य (वैदर्भ मार्ग) वाले (कवि लोग) तो। गिरां = वाणी में, काव्य में। अनाकुलं = अगम्भीर, सहज, सरल, उलझन-रहित, स्पष्ट। हृद्यं = रमणीय, मनोहर, हृदयाकर्षक। ओजः = ओज गुण को। इच्छन्ति = चाहते हैं, अभीष्ट मानते हैं, इच्छा करते हैं। यथा = जैसे। पयोधरतटोत्सङ्ग-लग्नसन्ध्यातपांशुका = (मेघखण्ड, बादल) के मध्य (मध्यभाग) में विद्यमान (स्थित) सन्ध्या-कालीन (सूर्य की) धूप रूपी लाल दुपट्टा धारण की हुई। वारुणी = (वरुण से सम्बन्धित) पश्चिम दिशा रूपी युवती (तरुणी)। कस्य = किस व्यक्ति के। चेतः = चित्त को, अन्तःकरण को। कामातुरं = कामातुर, काम से पीड़ित, कामदेव से व्याकुल। न करिष्यति = नहीं कर देगी, नहीं बना देगी।

(१) अन्येऽप्यनाकुलं

संस्कृतव्याख्या— वैदर्भाभिमतस्य ओजोगुणं निदर्शयत्यत्र- **अन्ये इति** । अन्ये गौडीयमार्गात् व्यतिरिक्ताः कवयः **गिरां** वाचां **अनाकुलं** स्पष्टं दीर्घसमासरहितमित्यर्थः, **हृद्यं** रमणीयं **ओजः** ओजोगुणम् **इच्छन्ति** अभिलषन्ति । **यथा— पयोधरतटोत्सङ्गलग्नसन्ध्यातपांशुका** पयोधरतटस्य मेघखण्डस्य उत्सङ्गे मध्यभागे लग्नः संलग्नः यः सन्ध्यातपः सन्ध्याकालिकसूर्यस्य आतपः स एव अंशुकं रक्तवस्त्रं यस्या तादृशी वारुणी पश्चिमा दिक् तरुणी **कस्य** जनस्य **चेतः** मनः **कामातुरं** कामविह्वलं **न करिष्यति** न सम्पादयिष्यति, सर्वमपि जनं कामविह्वलं करिष्यतीत्यर्थः । अत्र श्लेषेण कुचैकभागधृतरक्तवस्त्रा रक्तवर्णा मदिरा इव उन्मादयिनी सर्वेषामेव जनानां मनः कामविह्वलं कुर्वन्ती कामिनी अवगम्यते । पूर्वार्धे समासो दीर्घोऽपि स्पष्टया अर्थावबोधनं करोति अतः रमणीयः विद्यते । अयमोजोगुणः गौडवैदर्भयोः उभयोरपि मार्गयोः अभीष्टः। परञ्च गौडीयानुयायिनः अनुप्रासप्रियाः क्लिष्टपदबहुलसमासविन्यासमपि अभिलषन्ति, वैदर्भानुयायिनस्तु बन्धपारुष्यशैथिल्यादिदोषरहितं स्पष्टपदबहुलसमाससंयोजनम् इच्छन्ति ।

विमर्श—

(१) गौडीयमार्गाभिमत ओजगुण को स्पष्ट करने के बाद यहाँ वैदर्भमार्गाभिमत ओजगुण का स्पष्टीकरण किया गया है ।

(२) यद्यपि दोनों सम्प्रदाय वाले लोग काव्य में ओज गुण को स्वीकार करते हैं तथापि दोनों के समासप्रायस्त्व-योजन में भेद है । जहाँ गौडीयमार्गानुयायी पद्यकाव्य में भी अस्पष्ट लम्बे समासयुक्त पदों का संयोजन अभीष्ट मानते हैं, वहीं वैदर्भजन पद्यकाव्य में स्पष्ट (सरल) अर्थ वाले लम्बे समास युक्त पदों का ही प्रयोग करते हैं ।

(३) यहाँ श्लेष द्वारा पश्चिमदिशा रूपी ऐसी नायिका का वर्णन हुआ है जिसके स्तनों के एक भाग में लाल दुपट्टा विद्यमान है । 'वारुणी' से लोहित वर्ण वाली मदिरा की प्रतीति भी श्लेष द्वारा होती है ।

(४) वैदर्भमार्गाभिमत ओजगुण वाले इस पद्य का भी आशय गौडीयाभिमत ओजगुण वाले पद्य के समान ही है ।

(कान्तिगुणनिरूपणम्)

कान्तं सर्वजगत्कान्तं लौकिकार्थानतिक्रमात्[१] ।
तच्च वार्ताभिधानेषु वर्णनास्वपि दृश्यते[२] ।।८५।।

अन्वय— लौकिकार्थानतिक्रमात् सर्वजगत्कान्तं कान्तं (भवति) तत् च वार्त्ताभिधानेषु वर्णनासु अपि दृश्यते ।

(१) गतिक्रमत्   (२) विद्यते

शब्दार्थ— लौकिकार्थानतिक्रमात् = लोक-प्रसिद्ध वस्तु का अतिक्रमण न करने (अनुमोदन, अनुपालन करने) के कारण। सर्वजगत्कान्तं = सम्पूर्ण लोगों को रमणीय लगने वाला (बन्ध)। कान्तं = कान्ति नामक गुण से युक्त (होता है)। तत् च = और वह (कान्ति गुण-युक्त काव्य)। वार्ताभिधानेषु = वार्तालापों में। वर्णनासु अपि = और (वस्तुगुणों) के वर्णन में भी (प्रशंसायुक्त वाक्यों में)। दृश्यते = दिखलायी पड़ता है।

अनुवाद— लोकप्रसिद्ध वस्तु का अनुमोदन (अतिक्रमण न) करने के कारण सम्पूर्ण (वैदर्भ और गौडीय) लोगों को रमणीय लगने वाला बन्ध कान्ति नामक गुण से सम्पन्न होता है और वह (कान्ति गुण-युक्त काव्य) वार्तालापों में और प्रशंसा-युक्त वाक्यों में (वस्तुगुणों के वर्णनों) में भी दिखलायी पड़ता है।

संस्कृतव्याख्या— कारिकायामस्यां कान्तिगुणं प्रतिपदयति- **कान्तमिति**। **लौकिकार्थानतिक्रमात्** लौकिकस्य लोकप्रसिद्धस्य अर्थस्य वस्तुनः अनतिक्रमात् अपरित्यागात् अनुमोदनाद्वा **सर्वजगत्कान्तं** सकलजनप्रियं वाक्यं **कान्तं** कान्तिगुणान्वितं भवति। एवं लोकप्रसिद्धार्थवर्णनं कान्तिरिति फलितार्थः। **तत् च** कान्तिगुणोपेतं काव्यं **वार्ताभिधानेषु** लौकिकोपचारवचनप्रयोगेषु **वर्णनासु अपि** प्रशंसापरककथनेषु च **दृश्यते** अवलोक्यते।

विशेष—

(१) इस कारिका में कान्ति नामक गुण का विवेचन किया गया है। भाषा और भाव के प्रयोग के सम्बन्ध में लोकव्यवहार का उलङ्घन न करते हुए प्रशंसात्मक वाक्यों के संयोजन से उत्पन्न लोगों के चित्त को आकर्षित करने वाला गुण कान्ति कहलाता है।

(२) कान्ति नामक गुण दो रूपों से प्रस्फुटित होता है- (क) लोकव्यवहार के वार्तालाप तथा (ख) लोकव्यवहार में प्रयुक्त वस्तुगुण के वर्णन में। इसका उदाहरण अगले पद्यों में दिया गया है।

(वार्ताभिधानायाः कान्तेः निदर्शनम्)

गृहाणि नाम तान्येव तपोराशिर्भवादृशः।
सम्भावयति यान्येवं[१] पावनैः पादपांसुभिः[२]॥८६॥

अन्वय— तानि एव गृहाणि नाम यानि भवादृशः तपोराशिः पावनैः पादपांसुभिः एवं सम्भावयति।

---

(१) यान्येव

(२) पांशुभिः

शब्दार्थ— तानि एव = वे ही। गृहाणि नाम = वास्तव में (सौभाग्यशाली) घर होते हैं। यानि = जिनको। भवादृशः = आप जैसे। तपोराशिः = तपोधन, तपस्या रूपी धन वाले, तपस्वी। पावनैः = पवित्र, पावन। पादपांसुभिः = चरणरज (चरणधूलि) से। एवं = इस प्रकार से। सम्भावति = सम्मानित करते हैं, गौरवशाली बनाते हैं।

अनुवाद— वे ही (सौभाग्यशाली) घर होते हैं जिनकों आप जैसे तपोधन (तपस्या रूपी धन वाले महात्मा) (अपने) पावन चरणरज (चरणधूलि) से इस प्रकार से (अपने आगमन द्वारा) गौरवशाली बनाते हैं।

संस्कृतव्याख्या— वैदर्भाभिमतं वार्ताभिधानाया: कान्तेः निदर्शनं ददात्यत्र **गृहाणीति**। कस्यापि तपोधनस्य स्वागतार्थं कथनमिदम् **तानि एव गृहाणि** गृहपदवाच्यानि प्रशस्तानि सन्ति **यानि** गृहाणि **भवादृशः** युष्मत्सदृशः **तपोराशिः** तपस्वी जनः **पावनैः** पवित्रैः **पादपांसुभिः** चरणरजोभिः **एवम्** एवं प्रकारेण स्वागमनेन **सम्भावयति** सम्मानभाजनं करोति। वस्तुतस्तु तान्येव गृहाणि धन्यानि सन्ति यत्र भवादृशयस्य तपस्विजनस्य पदधूलिः पतति तदन्यानि गृहाणि तु तादृशसौभाग्याभावात् अधन्यान्येव। अत्र तपस्विजनस्य चरणधूलिसम्पर्केण गृहस्य अतिशयेन धन्यताकथनं लोकव्यवहारानुकूलमिति वार्तालापाभिधाना कान्तिः विद्यते।

विशेष—

(१) इस पद्य में तपस्वीजनों की चरणधूलि से गृहों के धन्य हो जाने का वर्णन लोकव्यवहार में प्रसिद्ध है। अतः यहाँ वार्ताभिधान रूप कान्तिगुण है।

(वैदर्भाभिमतं वस्तुगुणवर्णनात्मककान्तेः निदर्शनम्)

अनयोरनवद्याङ्गि स्तनयोर्जृम्भमाणयोः।
अवकाशो न पर्याप्तस्तव बाहुलतान्तरे ।।८७।।

अन्वय— अनवद्याङ्गि, तव बाहुलतान्तरे अनयोः जृम्भमाणयोः स्तनयोः पर्याप्तः अवकाशः न (विद्यते)।

शब्दार्थ— अनवद्याङ्गि = हे अनिन्द्य अङ्गों वाली सुन्दरी! तव = तुम्हारे। बाहुलतान्तरे = दोनों भुजारूपी लताओं के बीच में। अनयोः = इन (वक्षस्थल पर विद्यमान)। जृम्भमाणयोः = (प्रतिक्षण) बढ़ते हुए। स्तनयोः = दोनों उरोजों के लिए। पर्याप्तः = पर्याप्त, अपेक्षित। अवकाशः = स्थान, न = नहीं है।

अनुवाद— हे अनिन्द्य अङ्गों वाली सुन्दरी! तुम्हारे दोनों भुजारूपी लताओं के बीच में इन (वक्षस्थल पर विद्यमान) प्रतिक्षण बढ़ते हुए दोनों उरोजों के लिए पर्याप्त (अपेक्षित) स्थान नहीं है।

संस्कृतव्याख्या— वस्तुगुणवर्णनात्मककान्तेः निदर्शनं ददात्यत्र- **अनयोरिति**। **अनवद्याङ्गि** हे अनिन्द्यसवङ्गिसम्पन्ने सुन्दरि, **तव** सुन्दर्याः **बाहुलतान्तरे** कोमलभुजद्वयस्य मध्यभागे वक्षस्थले इत्यर्थः, **अनयोः** वक्षस्थले विद्यमानयोः **जृम्भमाणयोः** वर्धमानयोः **स्तनयोः** कुचयोः कृते **पर्याप्तः** अपेक्षितः **अवकाशः** स्थानं **न** विद्यते इति शेषः। तव वक्षसि निरन्तरं वर्धमानयोः विशालयोः स्तनयोः कृते अपेक्षितं स्थानं न वर्तते इत्यर्थः। अत्र कुचयोः अतिविशालत्वस्य अतिशयेन एवं विधं वर्णनं लोकव्यवहारे प्रसिद्धम्। अत एव वर्णनारूपः कान्तिगुणः।

विशेष—

(१) नायिका के उरोज इतने विशाल है कि उनके लिए नायिका की भुजाओं के मध्य में वक्षःस्थल पर अपेक्षित स्थान नहीं मिल रहा है- यह वस्तु का (नायिका के उरोज का) वर्णन यद्यपि अतिशयित है तथा लोक में प्रसिद्ध है; अतः यहाँ वस्तुगुणवर्णनात्मक कान्तिगुण है।

(पद्यद्वयोः कान्तिसङ्घटनम्)

इति सम्भाव्यमेवैतद् विशेषाख्यानसंस्कृतम्।
कान्तं भवति सर्वस्य लोकयात्रानुवर्तिनः ।।८८।।

अन्वय— इति विशेषाख्यानसंस्कृतम् एतत् सम्भाव्यं सर्वस्य लोकायात्रानुवर्तिनः कान्तं भवति।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। विशेषाख्यानसंस्कृतं = विशेष (अतिशय) कथन से सुशोभित (समन्वित, युक्त)। एतत् = यह (पूर्वोक्त पद्य)। सम्भाव्यं = सम्भाव्यता गुण से सम्पन्न। लोकयात्रानुवर्तिनः = लोक-व्यवहार का अनुसरण करने वाले। सर्वस्य = सभी लोगों के लिए। कान्तं = प्रिय, हृदयाकर्षक, रमणीय।

अनुवाद— इस प्रकार विशेष (अतिशय) कथन से सुशोभित (समन्वित) तथा सम्भाव्यतागुण से सम्पन्न यह (पूर्वोक्त पद्य) लोकव्यवहार का अनुसरण करने वाले सभी लोगों के लिए प्रिय (रमणीय) है।

संस्कृतव्याख्या— पद्यद्वयोः कान्तिगुणस्य सङ्घटनं प्रतिपादयत्यत्र- **इतीति**। **इति** एवं प्रकारेण **विशेषाख्यानसंस्कृतं** विशेषस्य अतिशयस्य आख्यानेन कथनेन संस्कृतं सुशोभितम् **एतत्** पूर्वोक्तं पद्यद्वयं **सम्भाव्यं** लोकव्यवहारानुसारेण संयोजनात् सम्भाव्यतागुणसमन्वितम् एव **लोकयात्रानुवर्तिनः** लोकप्रसिद्धार्थानुसारिणः **सर्वस्य** सहृदयजनस्य कृते **कान्तं** प्रियं रमणीयं वा भवति।

विशेष—

(१) उपर्युक्त कान्ति गुण के दोनों उदाहरणों में क्रमशः तपस्वी महापुरुषों की पदधूलि से घर की सौभाग्यशालिता तथा सुन्दरी के प्रतिक्षण वृद्धि को प्राप्त होते हुए उरोजों के लिए वक्षःस्थल पर स्थान की कमी का विशेष (अतिशय) का वर्णन हुआ है जो लोकव्यवहार में प्रसिद्ध है अतः यहाँ कान्ति गुण है।

(गौडाभिमतकान्तिनिरूपणम्)

लोकातीत इवात्यर्थमध्यारोप्य विवक्षितः।
योऽर्थस्तेनातितुष्यन्ति विदग्धा नेतरे जनाः॥८९॥

अन्वय— यः अर्थः लोकातीतः इव अत्यर्थम् अध्यारोप्य विवक्षितः तेन विदग्धा अतितुष्यन्ति इतरे जनाः न।

शब्दार्थ— यः = जो। अर्थः = अर्थ, प्रतिपाद्यवस्तु। लोकातीतः इव = लोकव्यवहार का अतिक्रमण करने वाले के समान। अत्यर्थं = अत्यधिक। अध्यारोप्य = कल्पना करके, कल्पना पर आधृत करके। विवक्षितः = कहने के लिए अभीष्ट (होता है)। तेन = उस (अर्थ) से। विदग्धा = चतुर लोग (गौडीय मार्गानुयायी)। अतितुष्यन्ति = अत्यधिक सन्तुष्ट होते हैं, अत्यधिक आनन्दित होते हैं। इतरे जनाः = (गौडानुयायियों से) अन्य लोग (वैदर्भानुयायी) न = नहीं।

अनुवाद— जो अर्थ (प्रतिपाद्यवस्तु) लोकव्यवहार का अतिक्रमण करने वाले के समान अत्यधिक कल्पना पर आधृत कथन के लिए अभीष्ट होता है उस (अर्थ) से चतुर लोग (गौडीय मार्गानुयायी) अत्यधिक सन्तुष्ट (आनन्दित) होते हैं, (गौडीयानुयायियों से) अन्य लोग (वैदर्भानुयायी) (इससे सन्तुष्ट) नहीं (होते)। अर्थात् लोकव्यवहार को अतिक्रमण करने वाला और कल्पनाप्रसृत कथन गौडानुयायियों को अत्यधिक अभिमत है; किन्तु वैदर्भमार्ग के समर्थक ऐसे कथन को स्वीकार नहीं करते।

संस्कृतव्याख्या— गौडाभिमतकान्तिगुणस्य स्वरूपं वक्ष्यत्यत्र- **लोकातीतः इति**। **यः अर्थः** यः प्रतिपाद्यविषयः **लोकातीतः इव** लौकिकव्यवहारम् अतिक्रान्तः इव **अत्यर्थम्** अतिशयेन **अध्यारोप्य** परिकल्प्य **विवक्षितः** कथितुमभीष्टः, अत्यतिशयकथनेन लोकव्यवहारातिक्रान्तः इत्यर्थः **तेन** तादृशेन प्रतिपाद्यविषयेन **विदग्धाः** काव्यप्रवीणाः मर्मज्ञा गौडीयाः **अतितुष्यन्ति** अतिशयेन सन्तुष्यन्ति, **इतरे जनाः** गौडीयसमर्थकाद् अन्ये वैदर्भाः जनाः तु **न** प्रीतिमावहन्ति। अत्यन्तं लोकव्यवहारातिक्रान्तः इव योऽर्थः कविप्रतिभया कल्पितः सन् कथितुम् अभीष्टः तेन गौडीयाः अतिशयेन सन्तुष्यन्ति वैदर्भाः ईदृशमर्थं न वाञ्छन्ति।

विशेष—

(१) अतिशय कल्पित वस्तु दो प्रकार की होती है– प्रथम लोकव्यवहार का अतिक्रमण करने वाली और दूसरी लोकव्यवहार में अनुमोदित। वैदर्भ मार्ग वाले लोकव्यवहार की सीमा में आने वाली अतिशय-कल्पना-प्रसूत वस्तु को स्वीकार करते हैं; किन्तु गौडीय मतानुयायी लोकव्यवहार का अतिक्रमण करने वाली कल्पनाप्रसूत वस्तु को अत्यधिक चाहते हैं।

(गौडीयाभिमतं कान्तेः वार्ताभिधाने निदर्शनम्)

देवधिष्ण्यामिवाराध्यमद्यप्रभृति नो गृहम्।
युष्मत्पादरजःपातधौतनिःशेषकल्मषम् ॥९०॥

अन्वय— युष्मत्पादरजःपातधौतनिःशेषकल्मषं नः गृहं अद्यप्रभृति देवधिष्ण्यम् इव आराध्यम् (जातम्)।

शब्दार्थ— युष्मत्पादरजःपातधौतनिःशेषकल्मषं = आप के चरण रज के गिरने से धुल गया है सम्पूर्ण पाप (मलिनता) जिनकी ऐसा, आपकी चरणधूली के गिरने से धुल गये सम्पूर्ण पाप वाला। नः = हमारा। गृहं = घर। अद्यप्रभृति = आज से लेकर। देवधिष्ण्यम् इव = देवमन्दिर के समान। आराध्यम् = पूजनीय (हो गया है)।

अनुवाद— आप की चरणधूलि के गिरने से धुल गये सम्पूर्ण पाप (मलिनता) वाला (यह) मेरा घर आज से लेकर देवमन्दिर के समान पूजनीय हो गया है।

संस्कृतव्याख्या— वार्ताभिधाने कान्तिगुणस्य गौडीयाभिमतं निदर्शनं ददात्यत्र— **देवेति**। कस्यापि तपोधनस्य स्वागताय कथनमिदम्। **युष्मत्पादरजःपातधौतनिःशेष-कल्मषं** तव भवतः पादयोः चरणयोः रजसां पांसूनां पातेन पतनेन धौतं क्षालितं निःशेषं सकलं कल्मषं पातकं मालिन्यं वा यस्मिन् यस्य तादृशं **नः** अस्माकं **गृहम्** निवासभवनं **अद्यप्रभृति** अद्यारभ्य **देवधिष्ण्यम् इव** देवमन्दिरम् इव **आराध्यं** पूजनीयं जातम्। अत्र कविकल्पितवस्तुना लोकव्यवहारातिक्रमणं विद्यते। यतो हि सत्पुरुष-पदधूलिसम्पर्केण गृहस्य पवित्रता एव लोकव्यवहारे प्रसिद्धा न तु देवमन्दिरसदृशी पूजनीयता। गौडा इमां कान्तिं स्वीकुर्वन्ति परञ्च वैदर्भानुयायिनां मते लोकव्यवहाराति-क्रमणात् नेयं कान्तिरिति।

विशेष—

(१) लोकव्यवहार में तपस्वीजन के आगमन से उसकी चरणधूलि से सम्पर्क के कारण घर का पवित्र होना तो प्रसिद्ध है, अतः यह लोकव्यवहार का अतिक्रमण नहीं प्रत्युत अनुमोदन है; किन्तु महात्माओं के चरणरज से घर का देवमन्दिर के समान

पूजनीय हो जाना लोकव्यवहार में प्रसिद्ध नहीं है; अतः यह लोकव्यवहार का अतिक्रमण है, अनुवर्तन नहीं।

(२) वैदर्भ मार्ग वाले लोकव्यवहार का अनुमोदन करने वाली रचना को ही कान्ति गुण सम्पन्न मानते हैं; किन्तु गौडीयमार्ग वाले लोकव्यवहार का अतिक्रमण करने वाली रचना को कान्तिगुण वाला मानते हैं।

(गौडाभिमतं वर्णनायां कान्तेः निदर्शनम्)

अल्पं निर्मितमाकाशमनालोच्यैव वेधसा।
इदमेवंविधं[1] भावि भवत्याः स्तनजृम्भणम् ।।९१।।

अन्वय— भवत्याः एवंविधं भावि स्तनजृम्भणम् अनालोच्य एव वेधसा इदम् आकाशं अल्पं निर्मितम्।

शब्दार्थ— भवत्याः = आपके, तुम्हारे। एवंविधं = इस प्रकार। भावि = होने वाले। स्तनजृम्भणं = स्तन के विस्तार को। अनालोच्य = आलोचना न करके, कल्पना न करके, विचार न करके। वेधसा = ब्रह्मा (विधाता) के द्वारा। इदं = यह। आकाशः = आकाश। अल्पं = छोटा। निर्मितं = बनाया गया है।

अनुवाद— तुम्हारे (इस प्रकार के) होने वाले स्तन विस्तार (स्तनों की वृद्धि) का विचार (कल्पना) न करके ही ब्रह्मा (विधाता) के द्वारा यह आकाश (इतना) छोटा बनाया गया है।

संस्कृतव्याख्या— वर्णनायां गौडाभिमतं कान्तिगुणस्य निदर्शनं ददात्यत्र- **अल्पमिति**। **भवत्याः** तव **एवंविधम्** ईदृशं **भावि** भविष्यत् **स्तनजृम्भणं** स्तन-विस्तारम् **अनालोच्य** मनसाविचार्य **वेधसा** प्रजापतिना ब्रह्मणा **इदं** पुरोदृश्यमानम् **आकाशं** गगनम् **अल्पं** स्वल्पं भवत्स्तनविस्ताराय अपर्याप्तमित्यर्थः **निर्मितं** विरचितम्। नायिकां प्रतिकथनमिदम्। नायिकास्तनविस्ताराय वक्षःस्थलस्यापर्याप्तत्वकथनं तु व्यवहारसिद्धम् अत एव अतिशयकथनमिदं व्यवहारानुमोदितं परञ्च नायिकायाः स्तनविस्ताराय आकाशमपि अपर्याप्तं इति वर्णनम् अतिकाल्पनिकं अतः एवेदं व्यवहारातिक्रमणमत्र। गौडाभिमतं व्यवहारातिक्रमितमतिशयकथनमेव कान्तिगुणोपेतमिति।

विशेष—

(१) नायिका के स्तन-विस्तार के अतिशय वर्णन के लिए वक्षःस्थल का अपर्याप्त होना तो लोक-व्यवहार में प्रसिद्ध है, अतः यह वर्णन लोकव्यवहारानुकूल है; किन्तु उसके लिए आकाश का अपर्याप्त होना तो अत्यधिक काल्पनिक है जो व्यवहार में प्रसिद्ध नहीं है। अतः यहाँ व्यवहारातिक्रमण हुआ है।

---

(१) इदमीदृग्विधं

ऐसी व्यवहारातिक्रमित रचना को ही गौडीयमार्ग वाले कान्तिगुण से समन्वित मानते हैं और उसे अत्यधिक आदर प्रदान करते हैं; किन्तु वैदर्भमार्गीय व्यवहारानुमोदित रचना को कान्तिगुण सम्पन्न मानते हैं।

इदमत्युक्ति[१]रित्युक्तमेतद् गौडोपलालितम् ।
प्रस्थानं प्राक्प्रणीतं तु सारमन्यस्य वर्त्मनः ।।९२।।

अन्वय— इदम् अत्युक्तिः इति उक्तम्। एतत् गौडोपलालितम्। प्राक्प्रणीतं प्रस्थानं तु अन्यस्य वर्त्मनः सारं (विद्यते)।

शब्दार्थ— इदं = यह (इस प्रकार पूर्वोक्तस्वरूप वाला काव्य)। अत्युक्तिः = अत्युक्ति, अतिशयोक्ति। इति = यह। उक्तं = कहा गया है, कहलाता है। एतत् = यह (काव्य)। गौडोपलालितम् = गौडीयमार्ग के अनुयायियों द्वारा अधिक पसन्द किया जाता है, गौडीय मार्ग वालों द्वारा अभिमत है। प्राक्प्रणीतं = पहले प्रणीत, निरूपित (निदिष्ट)। प्रस्थानं = प्रकार, काव्य। अन्यस्य = (गौडीय मार्ग से) अन्य। वर्त्मनः = (वैदर्भ) मार्ग वालों का। सारं = अभीष्ट (प्राणभूत, सार) है।

अनुवाद— यह (इस प्रकार पूर्वोक्त स्वरूप वाला काव्य) अत्युक्ति (अतिशयोक्ति) कहलाता है (और) यह (काव्य) गौडानुयायियों द्वारा अधिक पसन्द किया जाता है तथा (कान्तं सर्वजगत्कान्तं इस प्रकार) पहले (सोदाहरण) निरूपित (निर्दिष्ट) काव्य (गौडीय मार्ग से) अन्य (वैदर्भ) मार्ग वालों का अभीष्ट (प्राणभूत) है।

संस्कृतव्याख्या— गौडीयवैदर्भयोः कान्तिविषयं सिद्धान्तभेदं प्रतिपादयत्यत्र-**इदमिति**। **इदं** पूर्वोक्तस्वरूपं काव्यं **अत्युक्तिः** अतिशयोक्तिः **इति** उक्तं कथितं तद्विद्भिरिति योजनीयम्। **एतत्** अतिशयोक्तिरूपया स्वीकृतं काव्यं **गौडोपलालितं** गौडैः गौडानुयायिभिः उपलालितं कान्तिगुणत्वेन अत्यधिकम् अभीष्टं वर्तते। कान्तं सर्वजगत्कान्तमित्यादिना **प्राक्प्रणीतं** पूर्वनिरूपितं **प्रस्थानं** प्रकारम् **अन्यस्य** गौडीयमार्गाद् भिन्नस्य **वर्त्मनः** मार्गस्य वैदर्भजनस्य **सारम्** अभीष्टं प्राणभूतं वा भवति।

विशेष—

(१) पूर्ववर्ती उदाहरणों में तपस्वी के चरणधूलि के स्पर्श से घर का देवमन्दिर हो जाना और नायिका के स्तन विस्तार के लिए आकाश का अपर्याप्त होना- ये दोनों कथन अत्युक्ति (अतिशयोक्ति) से समन्वित हैं। ऐसे अतिशयोक्ति वाले काव्य गौडानुयायियों को विशेष प्रिय हैं तथा 'कान्तं सर्वजगत्कान्तं' इस प्रकार से पहले प्रतिपादित कान्तिगुण वैदर्भमार्ग के समर्थकों को अभीष्ट है।

(१) अत्युक्तिरियम्

(समाधिगुणनिरूपणम्)

अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र लोकसीमानुरोधिना ।
सम्यगाधीयते यत्र[१] स समाधिः स्मृतो[२]यथा ।।९३।।

अन्वय— यत्र लोकसीमानुरोधिना अन्यधर्म: ततो अन्यत्र सम्यक् आधीयते स: समाधि: स्मृत: ।

शब्दार्थ— यत्र = जिस (काव्यबन्ध) में । लोकसीमानुरोधिना = लोकव्यवहार की सीमा का अनुसरण (अनुपालन) करने वाले (कवि) द्वारा । अन्यधर्म: = (किसी) अन्य (वस्तु) का गुण । तत: = उससे । अन्यत्र = भिन्न (वस्तु) में । सम्यक् = सम्यक् प्रकार से, भलीभाँति । आधीयते = आरोपित किया जाता है । स: = वह (गुण का आरोपण) । समाधि: = समाधि । स्मृत: = कहलाता है ।

अनुवाद— जिस (काव्यबन्ध) में लोकव्यवहार की सीमा का अनुसरण (अनुपालन) करने वाले (कवि) के द्वारा (किसी) अन्य (वस्तु) का गुण उससे भिन्न (वस्तु) में सम्यक् प्रकार से (भलीभाँति) आरोपित किया जाता है, वह (गुण का आरोपण) समाधि (नामक गुण) कहलाता है ।

संस्कृतव्याख्या— समाधि: नाम दशमं गुणं प्रतिपादयत्यत्र- **अन्यधर्म इति** । **यत्र** यस्मिन् काव्यबन्धे **लोकसीमानुरोधिना** लोकव्यवहारं अनुसरता कविना **अन्यधर्मः** कस्यचिद् अन्यस्य वस्तुन: धर्म: गुण: **ततः** तस्माद् मुख्यात् वस्तुव्यतिरिक्तात् **अन्यत्र** अन्यस्मिन् गौणवस्तूनि **सम्यक्** सम्यग्रूपेण **आधीयते** आरोप्यते **सः** गुणारोपणं **समाधिः** तन्नामकगुण: **स्मृतः** कथित: काव्यशास्त्रज्ञै: इति शेष: । एवं प्रस्तुतस्य वस्तुन: धर्मं तिरोधाय तत्र सादृश्येन अप्रस्तुतवस्तुधर्मस्य तादात्म्याध्यावसानं समाधि: नाम गुण: इति । अत्रापि समाधिगुणे लोकव्यवहारसीमानुमोदनम् अपेक्षितं वर्तते । यतो हि लोकसीमानुरोधिना कविना काव्ये धर्मारोपणं निर्दिष्टं विद्यते ।

विशेष—

(१) इस कारिका में समाधि नामक गुण का विवेचन किया गया है । किसी अन्य वस्तु के धर्म का तद्भिन्न गौण वस्तु के ऊपर भलीभाँति आरोपित करना समाधि नामक गुण कहलाता है ।

(२) समाधि नामक गुण में किसी अन्य वस्तु के गुण को तद्भिन्न गौण वस्तु पर आरोपण का कार्य लोकसीमानुरोधी कवि के द्वारा किया गया होता है । इससे

---

(१) यत्तु

(२) समाधिर्यतो

स्पष्ट होता है कि आरोपण क्रिया में लोकव्यवहार की सीमा का उलङ्घन नहीं होना चाहिए।

(३) समाधि गुण रूपक योजना का एक प्रकार है। दण्डी की समाधिगुण की कल्पना को वामन ने वक्रोक्ति अलङ्कार के रूप में निरूपित किया है (द्रष्टव्य ४.३.८)। किन्तु भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण १.७२ में और अग्निपुराण के लेखक ने अग्निपुराण ३४५.१३ में समाधि गुण की व्याख्या दण्डी को ही आधार मान कर किया है।

(समाधिगुणस्य निदर्शनम्)

कुमुदानि निमीलन्ति कमलान्युन्मिषन्ति च।
इति नेत्रक्रियाध्यासाल्लब्धा तद्वाचिनी श्रुतिः ।।९४।।

अन्वय— कुमुदानि निमीलन्ति कमलानि च उन्मिषन्ति, इति नेत्रक्रियाध्यासात् तद्वाचिनी श्रुतिः लब्धा।

शब्दार्थ— कुमुदानि = कुमुद-समूह। निमीलन्ति = बन्द हो रहे हैं, सङ्कुचित हो रहे हैं। कमलानि च = और कमल। उन्मिषन्ति = खिल रहे हैं, विकसित हो रहे हैं, उन्मीलित (प्रस्फुटित) हो रहे हैं। इति = इस प्रकार। नेत्रक्रियाध्यासात् = नेत्र की क्रिया का आरोप होने के कारण। तद्वाचिनी = उस (नेत्र-क्रिया) की वाचक। श्रुतिः = कविश्रुति। लब्धा = प्राप्त हुई है, प्रयुक्त हुई है।

अनुवाद— 'कुमुद बन्द हो रहें हैं (सङ्कुचित हो रहे हैं) और कमल उन्मीलित (प्रस्फुटित) हो रहे हैं', इस प्रकार (यहाँ) नेत्र की क्रिया का आरोप होने के कारण उस (नेत्र-क्रिया) की वाचक (बन्द होने के अर्थ में निमीलन और खिलने के अर्थ में उन्मीलन) कविश्रुति प्रयुक्त हुई है।

संस्कृतव्याख्या— समाधिगुणस्य निदर्शनं ददात्यत्र- **कुमुदानीति**। **कुमुदानि** कैरवपुष्पाणि **निमीलन्ति** सङ्कुचन्ति **कमलानि च** सरोजानि च **उन्मिषन्ति** विकसन्ति इति एवं प्रकारेणात्र **नेत्रक्रियाध्यासात्** नेत्रक्रियायाः निमिलनोन्मीलनरूपस्य नेत्रव्यापारस्य कुमुदेषु कमलेषु च सङ्कोचविकासरूपयोरर्थयोः अध्यासात् आरोपात् **तद्वाचिनी** तदर्थवाचकः **श्रुतिः** कविश्रुतिः **लब्धा** प्रयुक्ताः विद्यते। सङ्कोचस्य निमीलनपदवाच्यत्वं विकासस्य च उन्मीलनपदवाच्यत्वं कविव्यवहारे प्राप्यते।

विशेष—

(१) इस पद्य में समाधि नामक गुण का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। कुमुदिनी के सङ्कुचित होने तथा कमल के विकसित होने में नेत्रव्यापारकार्य क्रमशः निमी-

लन और उन्मीलन का आरोप हुआ है और उस नेत्रव्यापार कार्य के वाचक शब्द निमिलन और उन्मीलन का प्रयोग भी हुआ है। अतः यहाँ समाधि नाम का गुण है।

(२) कवियों में सङ्कुचित अर्थ के लिए नेत्रव्यापार-विषयक निमीलन और विकास अर्थ में उन्मीलन शब्द का प्रयोग व्यवहार-सिद्ध है।

(३) निमीलन और उन्मीलन शब्द का प्रयोग यहाँ लाक्षणिक अर्थ में हुआ है। इस प्रकार समाधिगुण और लक्षणावृत्ति में अत्यधिक सन्निकटता है। अग्निपुराण ३४५.७-१८ में समाधिगुण का विवेचन लक्षणा के प्रसङ्ग में हुआ है।

(ग्राम्यशब्दानां समाध्याश्रयत्वं प्रशस्यम्)

निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम्[1] ।
अतिसुन्दरमन्यत्र[2] ग्राम्यकक्षां[3] विगाहते[4] ।।९५।।

अन्वय— निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम् अतिसुन्दरम् अन्यत्र ग्राम्य-कक्षायां विगाहते।

शब्दार्थ— गौणवृत्तिव्यापाश्रयम् = लक्षणावृत्ति के आश्रय वाले। निष्ठ्यूतोद्गीर्ण-वान्तादि = निष्ठ्यूत (थूका गया); उद्गीर्ण (उगला गया); वान्त (वमन किया गया) इत्यादि (शब्द)। अतिसुन्दरम् = अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त रमणीय, अत्यधिक मनोहारक। अन्यत्र = (लक्षणावृत्ति से) अन्यत्र (मुख्य अर्थ में प्रयोग किये जाने पर)। ग्राम्य-कक्षायां = ग्राम्य (अशिष्ट शब्दों) की श्रेणी में। विगाहते = होते हैं, आते हैं।

अनुवाद— लक्षणावृत्ति के आश्रय वाले (अर्थात् लक्षणावृत्ति में प्रयुक्त) निष्ठ्यूत (थूका गया), उद्गीर्ण (उगला गया), वान्त (वमन किया गया) इत्यादि (शब्द) अति रमणीय (सुन्दर) होते हैं। (लक्षणावृत्ति से) अन्यत्र (मुख्य अर्थ में प्रयोग किये जाने पर ग्राम्य (अशिष्ट शब्दों) की श्रेणी में आते हैं।

संस्कृतव्याख्या— ग्राम्यशब्दा अपि समाध्याश्रयेण गौणवृत्या प्रयुक्ताः सन्तः सौन्दर्यं भजन्ते इति प्रतिपादत्यत्र- **निष्ठ्यूत इति**। **गौणवृत्तिव्यपाश्रयं** लक्षणिकं लक्षणावृत्याश्रयम् **निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि** निष्ठ्यूतम् उद्गीर्णं वान्तं इत्यादि ग्राम्यपदसमूहः **अतिसुन्दरम्** सहृदयस्य कृते अन्यन्तं हृदयाकर्षकं भवति। **अन्यत्र** लक्षणावृत्त्यन्यत्र

(१) व्यपाश्रयात्
(२) अन्यत्तु
(३) कश्यां
(४) वगाहते

मुख्यतया वृत्या प्रयुक्तत्वे तु ग्राम्यकक्षां अशिष्टश्रेणीं विगाहते प्रतिपद्यते। लाक्षणिकेऽर्थे प्रयुक्ताः एते ग्राम्यपदाः सौन्दर्यमाप्नुवन्ति परञ्च मुख्ये अभिधार्थे प्रयुक्ताः तु ग्राम्याः एव मन्यन्ते।

विशेष—

(१) शिष्ट (अग्राम्य) और अशिष्ट (ग्राम्य) भेद से शब्द दो प्रकार के होते हैं। ग्राम्य (असभ्य) द्वारा प्रयुक्त शब्द ग्राम्य कहलाते हैं तथा शिष्टजनों द्वारा प्रयुक्त शब्द अग्राम्य कहे जाते हैं। अग्राम्य शब्दों का प्रयोग तो हृदयाकर्षक और उत्कृष्ट माना जाता है; किन्तु ग्राम्य पदों का प्रयोग प्रशंसित नहीं होता।

(२) निष्ठ्यूत (थूका गया), उद्गीर्ण (उगला गया), वान्त (वमन किया गया) इत्यादि शब्द ग्राम्य होते हैं। इनका प्रयोग अप्रशंसित माना जाता है; किन्तु इन पदों का प्रयोग गौण रूप से यदि लक्षणावृत्ति में किया जाता है तो ये पद अत्यधिक शोभाधायक होते हैं। लक्षणावृत्ति से अन्यत्र मुख्य अर्थ वाले अभिधावृत्ति में प्रयुक्त ये पद प्रशंसनीय नहीं होते और ग्राम्यता की श्रेणी में माने जाते हैं।

(लक्षणावृत्या प्रयुक्तस्याग्राम्यस्य निदर्शनम्)

पद्मान्यर्कांशुनिष्ठ्यूताः पीत्वा पावकविप्रुषः।
भूयो वमन्तीव मुखैरुद्गीर्णारुणरेणुभिः ।।९६।।
इति हृद्यमहृद्यं तु निष्ठीवति वधूरिति।

अन्वय— 'अर्कांशुनिष्ठ्यूताः पावकविप्रुषः पीत्वा पद्मानि उद्गीर्णारुणरेणुभिः मुखैः भूयः वमन्ति इव' इति हृद्यम् 'वधूः निष्ठीवति' इति तु अहृद्यम्।

शब्दार्थ— अर्कांशुनिष्ठ्यूताः = सूर्य की किरणों से थूके गये (निकाले गये)। पावकविप्रुषः = अग्निकणों (तेज के कणों) को। पीत्वा = पीकर, पान करके। पद्मानि = कमल। उद्गीर्णारुणरेणुभिः = लाल परागकणों (पराग-धूलि) को उगलते हुए (निकालते हुए)। मुखैः = मुखों से। भूयः = फिर। वमन्ति इव = मानो वमन कर रहे हैं; बाहर निकाल रहे हैं। इति = (इस प्रकार लक्षणावृति में प्रयुक्त) यह (कथन)। हृद्यं = मनोहारी, हृदयाकर्षक, सुन्दर, प्रशंसनीय। वधूः = बहू। निष्ठीवति = थूक रही है। इति = (इस प्रकार मुख्य अर्थ में प्रयुक्त) यह (कथन)। तु अहृद्यम् = निश्चितरूप से अप्रशंसनीय (असुन्दर) है।

अनुवाद— 'सूर्य की किरणों से थूके गये (निकाले गये) अग्निकणों को पीकर कमल लालपरागकणों को उगलते हुए (निंकालते हुए) मुखों से मानों फिर वमन कर रहे हैं (बाहर निकाल रहे हैं)', (इस प्रकार लक्षणावृत्ति में प्रयुक्त) यह (कथन)

प्रशंसीय है (किन्तु) 'बहू थूक रही है'- (इस प्रकार मुख्य अर्थ में प्रयुक्त) यह (कथन) निश्चित रूप से अप्रशंसनीय है।

संस्कृतव्याख्या— लक्षणावृत्त्याश्रयाणां निष्ठ्यूतादिग्राम्यपदानां प्रशंसनीयत्वस्य मुख्यवृत्याश्रयाणां च अप्रशंसनीयत्वस्य उदाहरणं ददात्यत्र- **पद्मानीति**। **अर्कांशुनिष्ठ्यूताः** अर्कस्य सूर्यस्य अंशुभिः किरणैः निष्ठ्यूताः निरस्ताः **पावकविप्रुषः** पावकस्य अग्नेः विप्रुषः स्फुलिङ्गान् तेजःकणिकाः इत्यर्थः, **पीत्वा** निपीय **पद्मानि** कमलानि **उद्गीर्णारुणरेणुभिः** उद्गीर्णाः विमुक्ताः अरुणाः लोहिताः रेणवः परागाः यैः तादृशैः **मुखैः** आननैः **भूयः** पुनः **वमन्ति इव** निःसारयन्ति इव। प्रातःकाले सूर्योदये जाते विकासमानानि कमलानि सूर्यकिरणानां तेजःकणिकान् पिबन्तीव प्रतीयन्ते पुनश्च रक्तवर्णान् परागकणान् विकीरन्ति च तानि प्रातःकाले पीतान् सूर्यकिरणतेजःकणान् निस्सारयन्तीव लक्ष्यते इत्यत्रोत्प्रेक्षालङ्कारेण प्रातःकालवर्णनस्य अङ्गभूतं कमलवर्णनं विद्यते। अत्र निष्ठ्यूतादिग्राम्यपदं लाक्षणिकत्वे प्रयोज्ये सति चमत्काराधिक्यं वर्द्धयति। अत एव एतत् **हृद्यं** सहृदयमनोहरं भवति। परञ्च **वधूः निष्ठीवति** इत्येतादृशं इत्यत्र मुख्यार्थे प्रयुक्तःनिष्ठीवति पदः चमत्काराभावात् विद्यते अत एव **अहृद्यम्** अरमणीयं सहृदयानामप्रियं वा जायते।

विशेष—

(१) यहाँ लक्षणावृत्ति में प्रयुक्त निष्ठ्यूत॰इत्यादि ग्राम्य पदों के चमत्कारपूर्ण होने तथा मुख्यार्थ में प्रयुक्त होने पर अप्रशंसनीय होने का उदाहरण दिया गया है।

(२) यद्यपि निष्ठ्यूत, उद्गीर्ण, वान्त पद ग्राम्य है किन्तु इस उदाहरण में इनका प्रयोग लक्षणावृत्ति में हुआ है। यहाँ निष्ठ्यूत पद का लाक्षणिक अर्थ निकालना, उद्गीर्ण का गिराना और वमन्ति का बाहर निकालना है जबकि इनका मुख्यार्थ क्रमशः थूकना, उगलना और वमन (उल्टी) करना है। इस उदाहरण में ये पद अपने मुख्यार्थ को छोड़कर अन्यार्थ के बोधक हैं। इस चमत्कारपूर्ण कथन के कारण ये प्रशंसनीय (सुन्दर) लगते हैं।

(३) निष्ठ्यूत इत्यादि पद मुख्यार्थ में प्रयुक्त होने पर ग्राम्यदोष के कारण प्रशंसनीय नहीं होते। जैसे- 'वधूः निष्ठीवति' अर्थात् बहू थूक रही है। यहाँ निष्ठीवति ग्राम्य पद अपने मुख्यार्थ थूकने के लिए प्रयुक्त है अतः यह प्रयोग अशोभन है।

युगपन्नैकधर्माणामध्यासश्च स्मृतो[१] यथा ।।९७।।

गुरुगर्भभरक्लान्ताः[२] स्तनन्त्यो मेघपङ्क्तयः।
अचलाधित्यकोत्सङ्गमिमाः समधिशेरते ।।९८।।

(१) मतो　　(२) भरा

अन्वय— नैकधर्माणां युगपत् अध्यास: स्मृत: । यथा गुरुगर्भभरक्लान्ता: स्तनन्त्य: इमा: मेघपङ्क्तय: अचलाधित्यकोत्सङ्गं समधिशेरते ।

शब्दार्थ— नैकधर्माणां = अनेक धर्मों (गुणों) का । युगपत् = एक साथ। अध्यास: च = आरोप भी । स्मृत: = (समाधि) कहलाता है । जैसे- गुरुगर्भभरक्लान्ता: = अन्तर्वर्ती (अन्तर्निहित) जल के गुरुभार से मन्थर (मन्दीभूत) । स्तनन्त्य: = गर्जन करती हुई । इमा: = ये । मेघपङ्क्तय: = मेघ की पंक्तियाँ, मेघमालाएँ । अचलाधित्यकोत्सङ्गं = पर्वत की चोटियों (शिखरों) के मध्यमभाग में । समधिशेरते = आश्रय लेती हैं, सोती है ।

अनुवाद— अनेक धर्मों गुणों का एक साथ (किसी अन्य वस्तु पर) आरोप भी (समाधि) कहलाता है । जैसे- अन्तवर्ती (अन्तर्निहित) जल के गुरुभार से मन्थर (मन्दगति वाली) और गर्जन करती हुई ये मेघ-पङ्क्तियाँ (मेघमालाएँ) पर्वत की चोटियों (शिखरों) के मध्यभाग का आश्रय लेती हैं ।

संस्कृतव्याख्या— अनेकधर्माणाम् एकत्रारोपितस्य समाधिगुणस्य सोदाहरणं विवेचनं करोत्यत्र- **युगपदिति** । **नैकधर्माणां** अनेकगुणानां **युगपत्** सहैव अन्यस्मिन् वस्तूनि **अध्यास: च** आरोप: अपि **स्मृत:** समाधिगुण: कथित: । **यथा- गुरुगर्भभरक्लान्ता** गुरुणा गुर्व्या गर्भभरेण अन्तर्निहितजलभारेण क्लान्ता: मन्थरभूता: **स्तनन्त्य:** गर्जन्त्य: **मेघपङ्क्तय:** मेघमाला: **अचलाधित्यकोत्सङ्गं** अचलाधित्यकाया: पर्वतशिखरस्य उत्सङ्गे मध्यभागे **समधिशेरते** आश्रयन्ति । अत्र गर्भवत्या: स्त्रिया: गुणानाम् एकत्र मेघमालायाम् आरोपणं विद्यते । यथा गर्भिण्य: युवतय: गर्भभारेण स्थूलोदरा भ्रूणेन क्लान्ता: सन्त्य: स्तनन्त्य: सख्यु: क्रोडे आश्रयन्ति तथैव मेघमाला: जलभारेण मन्थरा: सन्त्य: गर्जन्त्य: पर्वतोर्ध्वभागे आश्रयं गृह्णन्ति । अत्र बहूनां गौरवादीनां गर्भिणीधर्माणां सहैव मेघपंक्तिषु आरोपणात् समाधि: नाम गुण: ।

विशेष—

(१) अनेक गुणों का किसी अन्य वस्तु पर आरोपित करना भी समाधि गुण कहलाता है ।

(२) जिस प्रकार सगर्भा युवती गुरुतर गर्भभार से मन्द गति वाली होती है उसी प्रकार मेघमाला भी अन्तवर्ती जल के गुरुतर भार से मन्दगति वाली हो गयी है, गर्भिणी स्त्री मन्दगति वाली होकर सिसकती है तो मेघमाला भी गर्जन करती है और सगर्भा स्त्री अपनी सखी की गोद में सोती है तो मेघमाला भी पर्वत के शिखर के मध्यभाग में आश्रय लेती है। इस उदाहरण में सखी की गोद में सोना, शब्द करना, मन्थरता, गौरव इत्यादि गर्भिणी स्त्री के धर्मों का एकत्र मेघमाला पर आरोप किया गया है, अतः यहाँ समाधि नामक गुण है ।

उत्सङ्गे शयनं[१] सख्याः स्तननं गौरवं क्लमः[२] ।
[३]गर्भिणीधर्माः बहवोऽन्यत्र[४] दर्शिता ।।९९।।

अन्वय— सख्याः उत्सङ्गे शयनं, स्तननं गौरवं क्लमः इति इमे बहवः गर्भिणी-धर्माः अन्यत्र दर्शिताः ।

शब्दार्थ— सख्याः = सखी की, सहेली की । उत्सङ्गे = गोद में । शयनं = सोना, लेटना । स्तनननं = आर्त-ध्वनि करना, सिसकना । गौरवं = (गर्भ के) भार (गुरुता) का अनुभव करना । क्लमः = थकावट से उत्पन्न मन्थरता (मन्दगति) । इति = इस प्रकार । इमे = ये । बहवः = अनेक । गर्भिणीधर्माः = सगर्भा स्त्री के धर्म । अन्यत्र = अन्य वस्तु (मेघमाला) पर । दर्शिताः = (आरोपित करके) दिखाये गये हैं ।

अनुवाद— सखी (सहेली) की गोद में सोना (लेटना), आर्त्तध्वनि करना (सिसकना), (गर्भ के) भार (गुरुता) का अनुभव करना, थकावट से उत्पन्न मन्थरता (मन्दगति), इस प्रकार ये सगर्भा स्त्री के धर्म (हैं), (इनको) अन्य वस्तु (मेघमाला) पर (आरोपित करके) (उपयुक्त उदाहरण में) दिखलाया गया हैं ।

संस्कृतव्याख्या— पूर्वोक्ते निदर्शने अनेकधर्माणाम् अन्यत्र मेघमालायाम् आरोपः प्रदर्शयत्यत्र- **उत्सङ्गे इति** । **सख्याः** कस्याश्चित् **उत्सङ्गे** क्रोडे **शयनं** आश्रयग्रहणं, **स्तननम्** आर्त्तरोदनं **गौरवं** गर्भकृतदुर्भरत्वरूपा गुरूता **क्लमः** गौरवकृता ग्लानिः **इति इमे** एते **बहवः** अनेके **गर्भिणीधर्माः** गर्भिण्याः गर्भवत्यायाः धर्माः लक्षणविशेषाः गुणाः **अन्यत्र** अन्यस्मिन् वस्तूनि मेघमालायां **दर्शिताः** आरोप्य प्रदर्शिताः । अत एवात्र धर्मारोपरूपः समाधिगुणः विद्यते ।

विशेष—

(१) सहेली की गोद में सोना, आर्त्तरोदन करना, गर्भभार की गुरुता का अनुभव करना, थकावट से उत्पन्न मन्दगतिता- ये सभी गर्भवती स्त्री के धर्म-विशेष हैं । पूर्वोक्त उदाहरण में इन गुणों का मेघमाला पर एकत्र स्पष्ट आरोप किया गया है, अतः उस उदाहरण में समाधिगुण है ।

---

(१) उत्सङ्गशयनं
(२) गौरवक्लमः
(३) इहेमे, इतीह
(४) बहवोऽप्यत्र, ह्यत्र

तदेतत्काव्यसर्वस्वं समाधिर्नाम यः गुणः ।
कविसार्थः समग्रेऽपि तमेनमनुगच्छति ।।१००।।

अन्वय— यः समाधिः नाम गुणः तत् एतत् काव्यसर्वस्वं (विद्यते)। समग्रः अपि कविसार्थः तम् एनम् अनुगच्छति ।

शब्दार्थ— यः = जो । समाधिः नाम = समाधि नामक । गुणः = गुण है। तत् = वह (सम्प्रति निर्दिष्ट)। एतत् = यह (गुण)। काव्यसर्वस्वं = काव्य का सारभूत तत्त्व (है)। समग्रः अपि = तथा सभी (वैदर्भ और गौडीय)। कविसार्थः = कविसमुदाय। तम् = उस (सम्प्रति विवेचित)। एनम् = इस (गुण) का। अनुगच्छति = अनुसरण (अनुगमन) करता है।

अनुवाद— समाधि नामक जो गुण है। वह (सम्प्रतिनिर्दिष्ट) यह (गुण) काव्य का सारभूत तत्त्व है तथा सम्पूर्ण (वैदर्भ और गौडीय) कविसमुदाय उस (सम्प्रति विवेचित) इस (समाधि गुण) का अनुगमन (अनुसरण) करता हैं अर्थात् सभी कवि समुदाय अपने काव्य में इसका प्रयोग करते हैं।

संस्कृतव्याख्या— समधिगुणस्य वैदर्भगौडीययोरुभयोः मार्गयोः स्वीकृतत्वं प्रतिपादयत्यत्र- **तदेतदिति**। **यः समाधिःनाम** यः समाधिनामकः **गुणः तत्** सम्प्रति निर्दिष्टः **एतत्** इदम् **काव्यसर्वस्वं** काव्यस्य सारभूततत्वं विद्यते। **समग्रः अपि** सकलश्च वैदर्भगौडीयः **कविसार्थः** कविसमुदायः **तं** सम्प्रतिनिदर्शितं **एनं** गुणम् **अनुगच्छति** अनुसरति। द्वयोः मार्गयोः समाधिगुणः स्वीकृतः अस्तीत्यर्थः।

विशेष—

(१) समाधि नामक गुण काव्य का सारभूत तत्त्व है जिसका प्रयोग वैदर्भ और गौडीय दोनों मार्गों के कवि करते हैं।

इति मार्गद्वयं भिन्नं तत्स्वरूपनिरूपणात् ।
तद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तुं प्रतिकविस्थिताः ।।१०१।।

अन्वय— इति तत्स्वरूपनिपणात् मार्गद्वयं भिन्नं (परञ्च) प्रतिकविस्थिताः तद्भेदाः तु वक्तुं न शक्यते।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। तत्स्वरूपनिरूपणात् = उन (वैदर्भ और गौडीय मार्ग) के स्वरूप (की भिन्नता) के निरूपण द्वारा। मार्गद्वयं = दोनों (वैदर्भ और गौडीय) मार्ग। भिन्नं = भिन्न (अलग-अलग)। प्रतिकविस्थिताः = प्रत्येक कवि की स्थिति के अनुसार। तद्भेदाः = उनके। अवान्तर = भेदों को। वक्तुं न शक्यते = कहा नहीं जा सकता है, विवेचित (निरूपित) नहीं किया जा सकता है।

अनुवाद— इस प्रकार उन (वैदर्भ और गौडीयमार्ग) के स्वरूप (की भिन्नता) के निरूपण द्वारा दोनों (वैदर्भ और गौडीय) मार्ग भिन्न (अलग-अलग) (प्रतिपादित किये गये हैं। प्रत्येक कवि की स्थिति के अनुसार उनके (अवान्तर) भेदों को निरूपित नहीं किया जा सकता है।

संस्कृतव्याख्या— वैदर्भगौडीययोः मार्गद्वयोः स्पष्टान्तरत्वं निरूप्यात्र मार्गद्वयस्य भिन्नत्वं प्रतिपादयति- **इतीति**। **इति** एवं प्रकारेण **तत्स्वरूपनिरूपणात्** तयोः वैदर्भगौडीययोः मार्गयोः स्वरूपस्य भिन्नतया निरूपणात् विवेचनात् **मार्गद्वयं** वैदर्भगौडीयप्रस्थानद्वयं **भिन्नं** परस्परभेदेन निर्दिष्टं परञ्च **प्रतिकविस्थिताः** प्रत्येककविस्थित्यानुसारं **तद्भेदाः** तयोः मार्गयोः अवान्तरभेदाः तु निश्चितरूपेण **वक्तुं न शक्यते** प्रतिपादयितुं न पार्यन्ते।

विशेष—

(१) वैदर्भ मार्ग के प्राणभूत दश गुणों का निरूपण कर दिया गया है। इन गुणों के विषय में गौडीय मार्ग का विरोध भी प्रतिपादित किया गया है। इस प्रकार दोनों मार्गों का भेद स्पष्ट हो जाता है।

(२) स्थानविशेष में अभीष्ट काव्य के प्रत्येक कवि के अनुसार इन दोनों मार्गों के काव्यों में परस्पर कुछ न कुछ अन्तर होता है। वैदर्भमार्गीय सभी कवियों की रचना एक समान नहीं होती। उनमें थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य होता है। इसी प्रकार गौडीय मार्गीय सभी कवियों की रचनाओं में भी कुछ न कुछ भेद होता है। इस प्रकार दोनों मार्गों की रचनाओं के अनेक अवान्तर भेद हो जाते हैं। इस सभी अवान्तर भेदों के अन्तर को निरूपित नहीं किया जा सकता है।

इक्षुक्षीरगुडादीनां माधुर्यस्यान्तरं महत्।
तथापि न तदाख्यातुं सरस्वत्यपि शक्यते ।।१०२।।

अन्वय— इक्षुक्षीरगुडादीनां माधुर्यस्य महत् अन्तरं तथापि तत् आख्यातुं सरस्वती अपि न शक्यते।

शब्दार्थ— इक्षुक्षीरगुडादीनां = गन्ना (ईख), दूध, गुड, इत्यादि की। माधुर्यस्य = मधुरता (मिठास) में। महत् = महान्, अधिक। अन्तरं = अन्तर (भेद) (होता है)। तथापि = तो भी। तत् = उस (अन्तर, भेद) को। आख्यातुं = कहने के लिए, बतलाने के लिए। सरस्वती अपि = (विद्या की अधिष्ठातृदेवी) सरस्वती भी। न शक्यते = समर्थ (सक्षम) नहीं हैं।

अनुवाद— (यद्यपि) गन्ना (ईख), दूध, गुड, इत्यादि की मधुरता (मिठास) में अधिक (महान्) अन्तर (भेद) होता है तथापि उस (अन्तर) को बतलाने में सरस्वती भी सक्षम (समर्थ) नहीं है।

संस्कृतव्याख्या— मार्गद्वस्य आवान्तरस्यानेकस्य भेदस्य कथनमशक्यमिति दृष्टान्तद्वारा समर्थयत्यत्र- **इक्षुक्षीर इति**। यद्यपि **इक्षुक्षीरगुडादीनां** = इक्षुः रसालः क्षीरं दुग्धं गुडः इक्षुरसविकारः तदादीनां मधुरपदार्थाणां **माधुर्यस्य** मधुरतायाः **महान्** अत्यधिकम् **अन्तरं** भेदः भवति तथापि **तत्** अन्तरम् **आख्यातुं** कथितुं **सरस्वती अपि** विद्याधिष्ठातृदेवी सरस्वती अपि **न शक्यते** अक्षमा विद्यते। यथा इक्षुक्षीरादीनां मधुरपदार्थानां मधुरतायाः भेदकथने सरस्वती अपि असमर्था जायते तथैव वैदर्भगौडीयमार्गयोः अवान्तरभेदनिरूपणे अहमपि असमर्थोऽस्मि इत्यर्थः।

विशेष—

(१) ईख, दूध, गुड़ इत्यादि मधुर पदार्थ हैं; किन्तु उनकी मधुरता एक समान नहीं होती। उनकी मधुरता में कुछ न कुछ अन्तर होता है। उस अन्तर को शब्द द्वारा प्रकट करने के लिए सरस्वती में भी सामर्थ्य नहीं है।

(२) वैदर्भ और गौडीय मार्ग के अवान्तर भेदों के काव्यों में भी कुछ न कुछ विशेष चमत्कार होता है; किन्तु उन चमत्कारों में भी कुछ न कुछ भेद होता है। जिस प्रकार इक्षु, क्षीर इत्यादि की मधुरता में होने वाले अन्तर को नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार उन दोनों मार्गों के अवान्तर भेदों के चमत्कार के अन्तर को नहीं कहा जा सकता है।

(३) वैदर्भ और गौड़ इन दोनों मार्गों के विवेचन से यह नहीं समझना चाहिए। केवल दो ही काव्य-मार्ग हैं। वस्तुतः इन दोनों मार्गों का परस्पर भेद अत्यधिक स्पष्ट है। अतः इनका विवेचन करना सम्भव हो सका है; किन्तु इनके अवान्तर भेदों में अत्यधिक सूक्ष्म अन्तर है जो कवियों और उनकी रुचि के अनन्तता पर आधारित है अतः उन सभी के भेद को बताना सम्भव नहीं है।

(काव्यसम्पत्तेः हेतुनिरूपणम्)

नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः ॥१०३॥

अन्वय— नैसर्गिकी प्रतिभा च बहु च निर्मलं श्रुतं (अथ च) अमन्दः अभियोगः अस्याः काव्यसम्पदः कारणं (विद्यते)।

शब्दार्थ— नैसर्गिकी = स्वाभाविक, जन्मजात, प्राकृतिक। प्रतिभा = (नवोन्मेषशालिनी काव्यविषयक) प्रज्ञा (प्रतिभा)। बहु = अत्यधिक, प्रगाढ, विशाल। निर्मल = परिशुद्ध। श्रुतं = अध्ययन (या अध्ययन से उपार्जित ज्ञान), (अनेक शास्त्रों का) परिशीलन। **अमन्दः च** = और प्रगाढ़ (निरन्तर)। अभियोग = अभ्यास। अस्याः = इस। काव्यसम्पदः = काव्यरूपी सम्पत्ति के। कारणं = कारण, हेतु।

अनुवाद— स्वाभाविक (प्राकृतिक) (नवनवोन्मेषशालिनी काव्यविषयक) प्रतिभा, अत्यधिक (विशाल) परिशुद्ध (शास्त्रों का) अध्ययन और प्रगाढ (निरन्तर) अभ्यास- ये काव्यरूपी सम्पत्ति के कारण (हेतु) हैं।

संस्कृतव्याख्या— काव्यनिर्माणस्य कारणं निरूपयत्यत्र- **नैसर्गिकीति**। **नैसर्गिकी** स्वभावसिद्धा प्राकृतिकी प्रतिभा शक्तिः काव्यबीजरूपः संस्कारविशेषः नवनवोन्मेषशालिनी काव्यविषया प्रज्ञा वा **बहु** प्रभूतं **निर्मलं** संशयादिदोषरहितं परिशुद्धं नानाशास्त्रविषयकं **श्रुतं** शास्त्राभ्यसनं तदुपार्जितज्ञानं वा **अमन्दं** प्रगाढं निरन्तरं **अभियोगः** श्रुतस्य पुनरावृत्तिपूर्वकम् अभ्यासः इत्येते **काव्यसम्पदः** काव्यरूपस्य सम्पत्तेः काव्यनिर्माणस्येत्यर्थः **कारणं** हेतुः अस्तीति शेषः। कारणमित्येकवचननिर्देशेन समस्तस्यैव कारणत्रयस्य बोधकं न तु एकैकमिति अभिव्यज्यते।

विशेष—

(१) इस कारिका में काव्य-निर्माण के हेतुओं का निरूपण किया गया है। काव्यनिर्माण के तीन हेतुओं का निर्देश दण्डी ने किया है- (क) नैसर्गिकी प्रतिभा, (ख) विशाल और परिशुद्ध अध्ययन तथा (ग) प्रगाढ अभ्यास।

(२) कवित्व के बीजभूत संस्कार-विशेष को नैसर्गिकी प्रतिभा (शक्ति) कहा जाता है। यह प्रतिभा जन्मजात होने के कारण स्वाभाविक होती है। इस प्रतिभा के बिना यदि तुकबन्दी से काव्य बन भी जाय तो वह उपहास योग्य हो जाता है।

(३) समस्त चराचर-जगत् के व्यवहारों, सम्पूर्ण शास्त्रों, पुरुषार्थ चतुष्टय, महाकवियों के काव्यों, इतिहास पुराणादि का सम्पूर्ण विशाल और परिशुद्ध अध्ययन काव्य-निर्माण का दूसरा हेतु है।

(४) काव्य की रचना और उनकी विवेचना के ज्ञाता द्वारा नवीन कविता की रचना के लिए बार-बार प्रवृत्त होना अभ्यास कहलाता है।

(५) यद्यपि कारिका में काव्य के हेतुभूत कारण शब्द का प्रयोग एक वचन में हुआ है तथापि काव्य-रचना में ये तीनों कारण समवेत रूप से विद्यमान रहते हैं। उपर्युक्त तीनों कारणों की समष्टि काव्यनिर्माण तथा उसकी उत्कृष्टता में हेतु होते हैं। केवल एक हेतु से उत्कृष्ट काव्य की रचना नहीं हो सकती।

(सहजप्रतिभावेऽपि कवित्वसिद्धिप्रतिपादनम्)

न विद्यते यद्यपि पूर्ववासनागुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम् ।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम् ।।१०४।।

अन्वय— पूर्ववासनागुणानुबन्धि अद्भुतं प्रतिभानं यद्यपि न विद्यते (तथापि) श्रुतेन यत्नेन च उपासिता वाक् कमपि अनुग्रहं ध्रुवं करोति एव ।

शब्दार्थ— पूर्ववासनागुणानुबन्धि = पूर्वजन्म वाले संस्कार विशेष (वासना गुण) से उत्पन्न । अद्भुतं = अद्भुत, अलौकिक, प्राकृतिक । प्रतिभानं = प्रतिभा, (कवित्व) शक्ति । यद्यपि = यद्यपि । न विद्यते = नहीं है । श्रुतेन = अध्ययन से । यत्नेन च = और (अभ्यास रूपी) प्रयत्न से । उपासिता = उपासना की गयी, आराधना की गयी, सेवित । वाक् = वाणी, वाग्देवी (सरस्वती) । कमपि = कुछ न कुछ । अनुग्रहं = अनुग्रह, कृपा, दया । ध्रुवं = निश्चित रूप से । करोति एव = कर ही देती है, अवश्य ही कर देती है ।

अनुवाद— पूर्वजन्म वाले संस्कार विशेष (वासनागुण) से उत्पन्न अलौकिक (प्राकृतिक) प्रतिभा (कवित्वशक्ति) यद्यपि नहीं है, तथापि (काव्यशास्त्रादि के) अध्ययन और (अभ्यास रूपी) प्रयत्न से आराधना की गयी (सेवित) वाणी (वाग्देवता, सरस्वती) कुछ न कुछ (काव्यरचना की शक्ति प्रदान करके) निश्चितरूप से अनुग्रह (कृपा) कर ही देती हैं (अवश्य कर देती हैं) ।

संस्कृतव्याख्या— सहजप्रतिभायाः अभावेऽपि काव्यरचनायाः सिद्धिं प्रतिपादयत्यत्र- **न विद्यते इति । पूर्ववासनागुणानुबन्धि** पूर्ववासना पूर्वजन्मसंस्कारविशेषः एव गुणः धर्मविशेषः तं करणभावेन अनुबध्नाति सम्बद्धयते इति तादृशं प्राक्तनसंस्कारसम्बद्धम् इत्यर्थः **अद्भुतम्** अलौकिकं **प्रतिभानं** कवित्वप्रतिभा **यद्यपि न विद्यते** न विद्यमानं वर्तते तथापि **श्रुतेन** काव्यशास्त्राध्ययनेन **यत्नेन च** काव्यरचनाभ्यासरूपेण प्रयत्नेन च उपासिता सेविता **वाक्** वाणी वाग्देवता सरस्वती वा **कमपि** किञ्चिदपि **अनुग्रहं** काव्यरचनासामर्थ्यरूपं प्रसादं ध्रुवं निश्चयेन **करोति एव** ददाति एव । कारिकायां प्रयुक्तः एव शब्दः सन्देहनिवारणार्थम् । नैसर्गिकप्रतिभाऽभावेऽपि शास्त्राध्य-यनेन काव्यनिर्माणप्रयत्नेन च काव्यरचनासामर्थ्यं निश्चतरूपेण भवति एव ।

विशेष—

(१) काव्य-रचना में तीन हेतुओं का निरूपण किया गया है— नैसर्गिकी प्रतिभा, विशाल और परिशुद्ध अध्ययन तथा प्रगाढ अभ्यास । इन तीनों हेतुओं में से नैसर्गिकी प्रतिभा के न होने पर भी केवल शास्त्राध्ययन और कविता करने के

प्रयत्न से भी काव्य-रचना हो सकती है। जैसे- कालिदास इत्यादि कवियों में यद्यपि अलौकिक प्रतिभा नहीं थी फिर भी शास्त्राध्यन रूपी तपस्या और प्रयत्न करने से काव्य-रचना का प्रादुर्भाव हुआ है।

(२) यद्यपि दण्डी ने काव्य-निर्माण के तीन हेतुओं को प्रतिपादित किया है। इनके अभाव में कवित्व का होना असम्भव है। फिर भी यदि प्रतिभा के अभाव होने पर भी यदि शास्त्राध्ययन और काव्य-रचना का प्रयत्न किया जाय तो काव्य-रचना हो सकती है।

(वागुपासनामहत्त्वम्)

तदस्ततन्द्रैरनिशं सरस्वती श्रमादुपास्या खलु कीर्तिमीप्सुभिः ।
कृशे कवित्वेऽपि जनाः कृतश्रमा विदग्धगोष्ठीषु विहर्तुमीशते ।।१०५।।

।। इत्याचार्यदण्डिनः कृतौ काव्यादर्शे मार्गविभागो नाम प्रथमः परिच्छेदः ।।

अन्वय— तत् कीर्तिम् अप्सुभिः अनिशं अस्ततन्द्रैः सरस्वती श्रमात् उपास्या; कवित्वे कृशे अपि कृतश्रमाः जनाः विदग्धगोष्ठीषु विहर्तुम् ईशते।

शब्दार्थ— तत् = तो, इसलिए। कीर्तिम् = कीर्ति को, यश को। अप्सुभिः = अभिलाषी (चाहने वाली लोगों) द्वारा। अनिशं = सतत्, निरन्तर। अस्ततन्द्रैः = आलस्य-रहित (मन से), आलस्य-रहित होकर। सरस्वती = विद्या की अधिष्ठातृ देवी। श्रमात् = परिश्रमपूर्वक। उपास्या = उपासना की जानी चाहिए। कवित्वे = कवित्व शक्ति के। **कृशे अपि** स्वल्पमात्रा में (कम) होने पर भी। कृतश्रमाः = परिश्रम करने वाले। जनाः = लोग। विदग्धगोष्ठीषु = विद्वानों (सहृदयों) की गोष्ठियों (सभाओं) में। **विहर्तुम् ईशते** = विहार करने में समर्थ (सक्षम) हो जाते हैं।

अनुवाद— इसलिए (काव्य के) यश को चाहने वाले लोगों द्वारा आलस्य-रहित होकर विद्या की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती की परिश्रमपूर्वक उपासना की जानी चाहिए (अर्थात् यश के चाहने वाले लोगों को निरन्तर आलस्यरहित होकर परिश्रम पूर्वक सरस्वती की उपासना करनी चाहिए)। (क्योंकि) कवित्व-शक्ति के स्वल्पमात्रा में (कम) होने पर भी परिश्रम करने वाले लोग विद्वानों की सभाओं में विहार करने में समर्थ हो जाते हैं।

संस्कृतव्याख्या— वागुपासनायाः महत्वं प्रतिपादयत्यत्र- **तदिति**। **तत्** तस्मात्कारणात् **कीर्तिं** कवियशः **ईप्सुभिः** अभिलषमाणैः **अनिशं** निरन्तरम् **अस्ततन्द्रैः** आलस्यरहितैः सरस्वती विद्याधिष्ठातृदेवी **श्रमात्** परिश्रमपूर्वकात् **उपास्या** समाराधनीया यतो हि **कवित्वे** कवित्वशक्तौ **कृशेऽपि** स्वल्पमात्रे सत्यपि **कृतश्रमाः** काव्य-

शास्त्राध्ययनेन सम्पादितपरिश्रमाः **जनाः** कवयः **विदग्धगोष्ठीषु** विदग्धजनानां विदुषां गोष्ठीसु सभासु **विहर्तुम् ईशते** विहारं कर्त्तुं समर्थाः भवन्ति।

विशेष—

(१) कवियश की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति को आलस्य का परित्याग करके निरन्तर परिश्रमपूर्वक सरस्वती की आराधना अर्थात् काव्यशास्त्रादि का अध्ययन और काव्य-रचना का अभ्यास करना चाहिए। परिश्रम से किया हुआ अध्ययन कभी व्यर्थ नहीं जाता- सफलता अवश्य मिलती है।

(२) परिश्रम से अध्ययन करने वाला व्यक्ति अपने काव्यशास्त्रीय ज्ञान को कवित्व के रूप में बाँध देने के कारण विद्वानों के बीच में प्रशंसा (सम्मान) का पात्र हो जाता है। विदग्धगोष्ठों में निःसंदिग्ध भाव से रमण करता है।

॥ इस प्रकार डॉ० जमुनापाठककृत काव्यादर्श के मार्गविभाग नामक प्रथम परिच्छेद की 'शशिप्रभा' नामक व्याख्या समाप्त हुई ॥